राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक – पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

[सम्मान्य सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क ३१

राजस्थान में संस्कृत साहित्य की खोज
के विषय में
एक विशिष्ट विवरणी

लेखक
श्रीधर रामकृष्ण भाण्डारकर

प्रकाशक
राजस्थान राज्य संस्थापित
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर (राजस्थान)
RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यत: अखिल भारतीय तथा विशेषत: राजस्थानदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी आदि भाषानिबद्ध
विविध वाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावलि

प्रधान सम्पादक

पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

सम्मान्य संचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर;
ऑनरेरि मेम्बर ऑफ जर्मन ओरिएन्टल सोसाइटी, जर्मनी;
निवृत्त सम्मान्य नियामक (ऑनरेरि डायरेक्टर),
भारतीय विद्याभवन, बम्बई; प्रधान सम्पादक,
सिंघी जैन ग्रन्थमाला, इत्यादि

ग्रन्थाङ्क ३१

राजस्थान में संस्कृत साहित्य की खोज

के विषय में

एक विशिष्ट विवरणी

लेखक

श्रीधर रामकृष्ण भाण्डारकर

प्रकाशक

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

राजस्थान में संस्कृत साहित्य की खोज

के विषय में

एक विशिष्ट विवरणी

लेखक

श्रीधर रामकृष्ण भाण्डारकर

अनुवादक

पं० ब्रह्मदत्त त्रिवेदी

एम. ए., साहित्याचार्य, काव्यतीर्थ

प्रकाशनकर्त्ता

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

विक्रमाब्द २०२० | भारतराष्ट्रीय शकाब्द १८८५ | ख्रिस्ताब्द १९६३
प्रथमावृत्ति ७५० | | मूल्य ३.००

मुद्रक–विवरणी और ग्रन्थनामानुक्रमणिका, श्री जयअम्बे प्रेस, जयपुर

मुखपृष्ठ, संचालकीय वक्तव्य और परिशिष्ट आदि के मुद्रक–श्री हरिप्रसाद पारीक, साधना प्रेस, जोधपुर

विषय - सूची

संचालकीय वक्तव्य

बम्बई के शिक्षा-विभाग ने राजस्थान और मध्य भारत में प्राचीन हस्त-लिखित ग्रंथ-भंडारों की खोज के लिए सन् १९०४-०५ ई० में एलफिंस्टन कॉलेज, बम्बई के प्रोफेसर श्रीधर रामकृष्ण भंडारकर को आज्ञा प्रदान की। तदनुसार वे सन् १९०५ और १९०६ ई० के आरंभ में अपने दौरे पर निकले और कार्य पूरा होने पर शिक्षा विभाग को उन्होंने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। वह मूल रिपोर्ट अंग्रेजी में सन् १९०७ में प्रकाशित हुई थी। सरकार की ओर से हस्तलिखित ग्रंथों की खोज के प्रसंग में यह दूसरी यात्रा थी।

डॉ० भंडारकर की इस रिपोर्ट में उज्जैन, इन्दोर, ग्वालियर, बीकानेर, भटनेर, नागोर, अलवर, जयपुर और जैसलमेर आदि स्थानों के उन ग्रंथ-भंडारों का विवरण उस समय उनमें उपलब्ध महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की टिप्पणियों सहित दिया गया है, जो इस दिशा में कार्य करने वालों के लिए प्राथमिक मार्ग-निदर्शन करने जैसा है। इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रख कर जब सन् १९५० ई० में राज-स्थान सरकार द्वारा इस प्रतिष्ठान की 'राजस्थान पुरातत्त्व मंदिर' के रूप में संस्थापना की गई तो हमने इस विवरणी का हिन्दी अनुवाद करा कर मंदिर की ओर से उसे प्रकाशित करने का विचार किया। इससे दो उद्देश्यों की पूर्ति होती थी—एक तो यह कि मूल रिपोर्ट प्राय: दुर्लभ्य हो चुकी थी और दूसरा यह कि पुरातत्त्व मंदिर के द्वारा भी राजस्थान के संग्रहों का सर्वेक्षण कर के उनकी जानकारी शोध-विद्वानों को कराना अभिप्रेत था। स्पष्ट है कि प्रस्तुत रिपोर्ट का अधिकांश भाग राजस्थान के ही ग्रंथ-भंडारों से, जिनमें जैसलमेर के भंडार मुख्य हैं, सम्बद्ध है। साथ ही, ऐसे अनुवादों से हिन्दी की ग्रंथ-समृद्धि में भी वृद्धि हो जाती है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए हमने इस रिपोर्ट का हिन्दी अनुवाद पुरातत्त्व मंदिर के तत्कालीन शोध-सहायक श्री ब्रह्मदत्त त्रिवेदी, एम० ए०, साहित्याचार्य, काव्यतीर्थ से कराया।

पुस्तक का मुद्रण प्राय: कई वर्ष पूर्व पूर्ण हो चुका था। परंतु हम इस रिपोर्ट से सम्बद्ध कुछ अन्य सामग्री आदि के भी उपलब्ध होने की प्रतीक्षा करते रहे जो पर्याप्त तलाश करने पर भी प्राप्त न हो सकी, अतः अब इस पुस्तक को इसके

प्रस्तुत रूप में ही प्रकाशित किया जा रहा है। इसको उपयोगिता बढ़ाने और शोधकर्ता विद्वानों के सौकर्य के लिए ग्रंथ-नामानुक्रमणिका एवं मूल रिपोर्ट में उल्लिखित डॉ० ब्हूलर के २६ जनवरी १८७४ के पत्र और जैसलमेर-भंडारों के विषय में उनके अभिमत के अनुवाद भी लगा दिए गए हैं।

आशा है कि इस पुस्तक का प्रकाशन शोधकर्ता विद्वानों के लिए लाभप्रद सिद्ध होगा।

श्रावणी तीज,
सं० २०२०।

अनेकान्त विहार,
अहमदाबाद।

मुनि जिनविजय

राजस्थान में संस्कृत साहित्य

की

खोज के विषय में एक विशिष्ट विवरणी

—❀:०:❀—

महोदय,

शिक्षा-विभाग के सं० २३२१ और ६६० के सरकारी प्रस्तावों के अनुसार (जिनका दिनाङ्क क्रमशः १४ दिसम्बर, १६०४ और १२ अप्रेल, १६०५ है) सन् १६०५ और १६०६ के आरम्भ में किये गये मध्यभारत और राजपूताना के अपने दौरे का निम्नलिखित विवरण सेवा में प्रस्तुत करता हूँ।

२ – प्रथम प्रस्ताव की एक प्रतिलिपि मुझे सन् १६०४ के क्रिसमस अवकाश में मिली परन्तु फरवरी मास के पहले मैं किसी प्रकार अपने महाविद्यालय के कार्यभार से मुक्त न हो सका। अतः फरवरी मास में मुझे कालेज से अवसर मिलते ही मैंने अपना दौरा आरम्भ किया।

३ – जिस स्थान पर पहला दौरा करने की, कई कारणवश मेरी इच्छा थी, वह था जैसलमेर। यह नगर मरुस्थल के मध्य में है और वहां से सन्निकट रेलवे का स्टेशन ६० (नब्बे) मील दूर है। यहां प्रायः ऊंटों पर ही यात्रा होती है। श्री डाक्टर बूहलर जिन्होंने १८७४ के जनवरी मास में इस स्थान का दौरा किया था, लिखते हैं–"मरुधर प्रदेश का यह विकट स्थान, जहां खराब पानी और नहरू के रोग की प्रचुरता है, अल्प काल के लिए ठहरना भी कम कष्टदायक नहीं होता।" पश्चिमी राजपूताना राज्यों के तत्कालीन रेजिडेण्ट महोदय भी, जिनसे मेरी मुलाकात सन् १६०४ में हुई, इस यात्रा को विकट, दुःखप्रद और कष्टसाध्य बताते थे। श्री डा० बूहलर एक सप्ताह से अधिक नहीं ठहर पाये ऐसा मुझे बताया गया †। इस स्थान का प्रमुख जैन-भण्डार (पुस्तकालय), जो एक जैन मन्दिर से सम्बन्धित है, अपनी सुरक्षित हस्तलिखित पुस्तकों के लिए प्रसिद्ध है। इसके स्वत्वाधिकारी पुरुषों द्वारा दिये गये प्रतिवचनों के अनुसार, कि मेरे निरीक्षणार्थ यह भंडार खोल दिया जायगा, मुझे यह समुचित लगा कि इस अवसर का जल्दी से जल्दी लाभ उठाया जाय। अन्यथा यह डर था कि कहीं वे

---

† उस समय, इस प्रसिद्ध भण्डार के सम्बन्ध में, जो पत्र उन्होंने जैसलमेर से सम्पादक महोदय इण्डियन एण्टीक्वेरी को लिखा उसका दिनांक २६ जनवरी १८७४ है, जब कि उनने और डा० जैकोबी ने ६ दिन तक वहां कार्य सम्पन्न कर लिया था (जिल्द ३, पृष्ठ ८६–६०) उनका अन्य पत्र जो बर्लिन की एकेडमी के सम्मुख श्री वेबर ने प्रस्तुत किया था वह बीकानेर से दिनांक १४ फरवरी का लिखा हुआ है (इण्डि० एण्टी० ४, पृ०८१) जैसलमेर से बीकानेर की यात्रा में उन्हें कई दिन लगे होंगें और यह हो सकता है कि बाद में लिखे गये पत्र को भेजने के पूर्व वह वहां कई दिन से आगये हों।

लोग अपनी राय न बदल दें। दुर्भाग्य से श्री डा० बूहलर की, राजपूताना (वर्तमान राजस्थान) में किये गये अपने दौरे की सविस्तर विवरणी, जिसे वे सन् १८८०-८१ में प्रकाशित करना चाहते थे, उनके मृत्युपर्यन्त (सन् १८९८ ई० तक) न प्रकाशित होने से, ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि वह सारी रिपोर्ट खो गई होगी। उन्होंने ८ जून, सन् १८८० की रिपोर्ट में लिखा था–"सन् १८७३-७४ का शरत्कालीन दौरा, जो मैंने राजपूताना में किया उसकी विस्तृत रिपोर्ट और साथ-साथ उस समय मेरे द्वारा खरीदी हुई पुस्तकों का विवरण, जो संक्षेप से मैंने तैयार किया है, उसे, लम्बे टेबुलर आकार में, मुझे विश्वास है कि मैं जल्दी से जल्दी इस वर्ष प्रकाशित कर दूंगा।" परन्तु खरीदी हुई पुस्तकों की वह सूची और सन् १८७३-७४ में नकल की हुई पुस्तकों की विवरणी, श्री डा० कीलहोर्न महोदय की रिपोर्ट के साथ प्रकाशित हुई। इस प्रकार ऊपर जिक्र की गई और तैयार की गई विस्तृत रिपोर्ट का केवल यही अंश प्रकाश में आया है। इन्हीं कारणों से जैसलमेर की यात्रा और उस स्थान के प्रमुख पुस्तक-भण्डार में हस्तलिखित पुस्तकों के परीक्षण कार्य को, जिसके लिए मुझे कार्यभार सौंपा गया था, मैंने कठिनतम, अत्यावश्यक और महत्त्वपूर्ण समझा। यह हो जाने पर मुझे ऐसा लगा कि अवशिष्ट कार्य तुलनात्मक दृष्टि से कम कठिनता से हो जायगा।

४–परन्तु जैसा मैंने दिनाङ्क ९ अप्रेल १९०४ की अपनी प्रारम्भिक रिपोर्ट के अनुच्छेद ११ में बताया था, पश्चिमी राजपूताना राज्यों (स्टेट्स) के श्री रेजिडेण्ट महोदय ने लिख दिया था, कि अपनी यात्रा प्रारम्भ करने के एक पक्ष पूर्व, मैं उनसे पत्र व्यवहार करूं ‡ जिससे मेरे लिए यात्रा के साधन प्रस्तुत किये जा सकें। मैं यह सूचना, अपना दौरा आरम्भ करने को स्वतन्त्र होते ही दे सकता था और मैंने ऐसा ही किया। पत्र-व्यवहार करने और जैसलमेर को प्रस्थान करने के बीच के समय का उपयोग, मैंने इन्दौर और उज्जैन के ग्रन्थ भण्डारों के देखने में किया। उस समय तक उज्जैन में प्लेग नहीं रहा। इस स्थान पर मेरी प्रारम्भिक यात्रा के आदि और अन्त में प्लेग फैली हुई थी, और जब उज्जैन जैसे स्थान पर एक बार प्लेग का आक्रमण हुआ तो यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि कब फिर से इस संक्रामक रोग का आविर्भाव वहां हो जाय। साथ ही कुछ काम इन्दौर में करना बाकी रह गया था, अतः शीघ्राति-शीघ्र अवसर से हाथ न धो बैठने के लिये लाभ उठाया गया।

५–मेरे प्रथम सरकारी प्रस्ताव के प्राप्त करने की तिथि और महाविद्यालय में अपने कार्यभार से अवसर पाने की तिथि के बीच में, मैंने अपने सहायक व सहायकों को ढूंढने की चेष्टा की, जिन्हें नियुक्त करने की मुझे आज्ञा मिल चुकी थी। जैसा कि अपने पत्र संख्या ३१ दिनाङ्क १२ जुलाई, १९०४ में मैंने बताया, मुझे आशा थी कि शास्त्री रामचन्द्र दीनानाथ † को, जिनकी जैन साहित्य के शास्त्रीय ज्ञान की योग्यता बहुत अधिक थी और जिनको श्री डा० बूहलर, कील्होर्न, पिटरसन व भाण्डारकर जैसे महानुभावों के साथ हस्त-

‡ यह दीर्घ काल पूर्व की सूचना मेरी लौटती यात्रा के लिये बहुत ही परेशानी की और आराम के बिना की होने से, बहुत ही अपर्याप्त सिद्ध हुई। उस अवसर पर मेरी यात्रा के साधन असन्तोषजनक थे।

† शास्त्रीजी का ३ या ४ मास पूर्व परलोकवास हो गया, यह बात मुझे उस दिन मालूम हुई २९ जून १९०७)।

लिखित पुस्तकों के कार्य का दीर्घकालीन अनुभव था, नियुक्त कर सकूंगा। परन्तु अपने घरेलू कार्यों की कठिनाई के कारण उन्हें अस्वीकार करना पड़ा और मुझे इस प्रान्त से अपने साथ ले जाने के लिए शास्त्री न मिल सका। अन्त में मुझे बताया गया कि एक पण्डित राजपूताना में है जिसने एक स्टेट में हस्तलिखित पुस्तक संग्रहालय के अध्यक्ष के रूप में काम किया था और उसका सूचीपत्र बनाया था। उसके प्राप्त प्रमाण-पत्रों और हस्तलिखित पुस्तकों के सम्बन्ध में उसके व्यवहारयोग्य ज्ञान से मैंने सोचा कि वह योग्यतापूर्वक काम निभा देगा। अतः मैंने उसे नियुक्त कर लिया। बाद में मुझे पता लगा कि अनवधानता, एवं स्वच्छता और स्पष्ट लेखन के अभाव के दोष, जो प्रायः ऐसे कार्यों के सम्पादन में होते हैं और जिनके लिए हस्तलिखित पुस्तकों के अनुसन्धान एवं अन्वेषण-कर्त्ता विद्वान् शिकायत किया करते हैं, उसमें पूर्णतया विद्यमान थे। इसके साथ ही संस्कृत व्याकरण को अभ्यासपूर्वक पढ़ने पर भी उसका लेख परिशुद्ध नहीं होता था। उसे दन्त्य, तालव्य और मूर्धन्य षकारों की जानकारी नहीं के बराबर थी। यह इस देश के पण्डितों की विशेष दोषप्रणाली है। इतना होने पर भी मुझे उसका अत्यधिक सुन्दरतम उपयोग करना पड़ा।

६ – इस प्रकार जब मैं जाने को उद्यत हुआ तब उसे नियुक्त कर श्री डा० कीलहोर्न के परामर्शानुसार कार्य नहीं कर सका जिसका मैंने अपनी पूर्व रिपोर्ट $ के अनुच्छेद २ में वर्णन किया है और ना ही मैं उसे आरम्भिक कार्य करने के लिए मेरे पहले भेज सका। मैंने उस तरह के प्रारम्भिक कार्य को करने के लिए उस (पण्डित) को जब १६०५ के अप्रेल के अन्त में अपनी प्रथम यात्रा पूरी कर चुका तब नियुक्त किया।

७– इन्दौर में मैंने चार नूतन पुस्तक-संग्रहों को देखा जहां मैं पूर्व अवसर पर नहीं जा सका था। इनमें से एक में अनुपयोगी सूची थी, दूसरे में केवल मुद्रित पुस्तकें संगृहीत थीं। एक का संचालन ठीक नहीं हो रहा था। उसकी अवस्था दयनीय थी। तीसरा संग्रह छोटा परन्तु अच्छा था और चौथा महत्त्वपूर्ण था।

८ – कुछ विशेष महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित पुस्तकें, जिन्हें मैं देख पाया, निम्नलिखित हैं:-

विलोम संहिता (वाज०)।

सामविधान भाष्य (सायणकृत)।

ऋषभगान।

प्रातिशाख्य दीपिका (वेद में प्रयुक्त स्वर एवं संस्कारों के सम्बन्ध के नियम)-श्री सदाशिव अग्निहोत्री कृत। अन्य संग्रह में प्राप्त एक हस्तलिखित प्रति में रचनाकार इस लेखक का पुत्र बताया गया है।

कात्यायन श्रौत-सूत्र-भाष्य – श्री काशीनाथ दीक्षित कृत।

कात्यायन-श्रौत-पद्धति – मिश्र वैद्यनाथ कृत।

आहिताग्नेर्दाहनिर्णय – भट्टराम कृत।

रत्नगुम्फ (अग्निहोत्र प्रायश्चित्त)।

$ उस रिपोर्ट के अनुच्छेद ३ और ५ में 'श्री डा० कीलहोर्न' के बदले 'डा० बूहलर' भूल से अशुद्ध छपा है।

यज्ञदीपिका विवरण – श्रीभास्कर कृत ।
वर्णरत्नदीपिकाशिक्षा – अमरेश कृत ।
सश्राद्ध छाग भाष्य – कात्यायन के स्नानसूत्र पर याज्ञिकचक्रचूडामणि छाग की टीका है ।
यजुर्विधान (माध्यन्दिनीय) ।
सूक्तानुक्रमणिका – श्री जगन्नाथ कृत ।
अग्निहोत्रप्रयोगरत्नामणि – भरद्वाज अनन्त सोमयाजी के सुपुत्र रामचन्द्र दीक्षित कृत ।
वाजपेय पद्धति – दामोदर त्रिपाठी के पुत्र रामकृष्ण अपर नामक नानाभाई कृत ।
यज्ञतन्त्र सुधानिधि – उद्गातृ प्रकरण ।
आश्वलायन-श्रौत-सूत्र-वृत्ति – श्री देवत्रात कृत ।
दुरूह शिक्षा – अप्पयदीक्षित कृत ।
खादिर गृह्यसूत्र – श्री रुद्रस्कन्दाचार्य की टीका समेत ।
तण्डालक्षण सूत्र (सामवेद) ।
कल्पानुपद सूत्र (,,) ।
पञ्चविधि सूत्र ।
द्राह्यायण श्रौतसूत्रीय औद्गात्र सोम सूत्र ।
वेदाङ्ग ज्योतिष पर टीका – श्रीशेष कृत ।
त्रिस्थली सेतु-गया प्रकरण – श्री रामभट्ट आकूत कृत ।
ललितास्तवरत्न – श्री शङ्कराचार्यस्वामि कृत ।
रामायण सार संग्रह – श्री निवासाचार्य कृत ।

चतुर्वर्ग-चिन्तामणि-परिशेष-खण्ड – इष्टापूर्त्तधर्म-निरूपण और सर्वदेवताप्रतिष्ठाकर्म पद्धति (प्रतिष्ठा हेमाद्रि) ।

पर्वनिर्णय – श्री गणपति रावल कृत ।
प्रतिष्ठोल्लास – श्री शिवप्रसाद कृत ।
कालमाधवकारिका व्याख्यान – बैजनाथ भट्ट सूरि कृत ।
प्रायश्चित्तेन्दुशेखर – काशीनाथ कृत ।

स्मृतिदर्पण – श्रीसरस्वतीतीर्थ कृत । हस्तलिखित ग्रन्थ की मिति शक १४४४ (चित्रभानु) ।

दत्तकक्रम संग्रह – श्रीकृष्णतर्कालङ्कार भट्टाचार्य कृत ।

शुद्धिपदपूर्वक चन्द्रिका (शुद्धि चन्द्रिका) – धर्माधिकारिक रामपण्डितसूनुनन्दपण्डित अपरनामधेय विनायक कृत ।

धर्मशास्त्र सुधानिधि श्राद्धचन्द्रिका – दिवाकर भट्ट कृत ।
संन्यास पद्धति – विश्वेश्वर सरस्वती कृत ।
हिरण्यकेशीय अग्निमुख ।
हिरण्यकेशीय स्मार्त्तप्रयोगरत्न – वैशम्पायन महेशभट्ट कृत ।
पराशरस्मृति – विवृति – विद्वन्मनोहरा ।

स्मृत्यर्थसार – १४५४ सम्वत् में प्रतिलिपि की गई।

नामबन्ध शतक – श्री भवदेव पण्डित रचित। प्रशस्ति के पद्यों में उपाय, युग आदि के नाम संलग्न हैं।

शिवचरित – श्री हरदत्त कृत।

गाथासप्तशती – श्री कुलाबदेवरचितटीका समेत।

चम्पूकाव्य – श्री समरपुङ्गव कृत।

महाभाष्य प्रदीप – प्रकाशनारायण दीक्षित के पुत्र और अम्बादीक्षित के पौत्र अप्पय दीक्षित के भाई नीलकण्ठदीक्षित कृत।

परिभाषेन्दुशेखर टीका सर्वमङ्गला।

काव्यप्रकाश टीका काव्यदीपिका।

" " सूर्यनारायण अध्वरीन्द्र के पुत्र और धर्मदीक्षित के पौत्र साम्बशिव कृत।

तत्त्वसमास पर टीका।

मीमांसा कुतूहल – कमलाकर रचित।

श्लोकवार्तिक – १४५६ (जय) शक में लिखी गई प्रति।

न्यायशुद्ध – १६८३ सम्वत् में प्रतिलिपि की गई।

नारायणोपनिषद् भाष्य – सायण कृत।

कुछ वल्लभ सम्प्रदाय के ग्रन्थ।

शिवभक्ति रसायन – काशीनाथ कृत।

शिव सूत्रवार्त्तिक – वरदराजकृत, जो मालूम होता है कि कृष्णदास नाम से भी अभिहित होता था ‡।

ब्रह्मसूत्रार्थ संग्रह – श्रीशठारि कृत – सम्भवत: वेदान्त शुद्धरहस्य के कर्त्ता शिवकोप मुनि के गुरुदेव ही।

शिवसिद्धान्तशेखर – श्री काशीनाथ कृत।

सप्तपदार्थीटीका – मितभाषिणी की प्रतिलिपि १५०० शाक में की हुई।

अनुमानमणि सार।

उपमानसंग्रह – प्रगल्भ कृत।

शब्दबोधप्रकाशिका – श्री रामकिशोर रचित।

बृहत्तर्क प्रकाश-शब्दपरिच्छेद।

अनुमितिनिरूपण टीकासहित, दोनों के रचयिता रामनारायण।

'शैवागमे शिवषण्मुखसम्वादे' उग्ररथ शान्तिकल्प प्रयोग।

‡ मया वरदराजेन साया (?) मोहापहारकम् श्री क्षेमेन्द्रराजनिर्णीतम् (ता ?) व्याख्यानाध्वानु सारिणा कृतिना कृष्णदासेन व्यंजितं कृपयाञ्जसा।

९– जब १९०५ सन् में मैं उज्जैन गया तो वहाँ उपनयन एवं विवाह के संस्कारों की बड़ी धूम थी। अतः उस समय कुछ संग्रहालयों को मैं नहीं देख सका। फिर दूसरे वर्ष इस स्थान पर थोड़े समय के लिये आया। इन दोनों यात्राओं में मैंने १४ संग्रहालयों को घूम फिर कर देखा। इनमें से केवल ४ या ५ की तो सादी सूचियां थीं। प्रायः ६, या ७ के सम्हालने के काम को उनके सञ्चालक लोग ठीक रूप में कर रहे थे। एक में बहुत पुरानी हस्तलिखित पुस्तकें होने पर भी उनका क्रम बहुत ही अस्तव्यस्त था। हस्तलिखित ग्रन्थों में एक का भी पृष्ठ पूरा नहीं था। उसका मालिक जो बहुत वृद्ध था इसी वजह से लज्जा के मारे पहले तो हस्तलिखित पुस्तक दिखलाने में सङ्कोच करता था; दूसरा, संग्रहालय चूहों, दीमकों जैसे पुस्तकभक्षी कीटकों की दया पर आश्रित था। मैं एक जैन उपाश्रय में (जैनयतियों के अल्प वासस्थान में) केवल पुस्तक सूचि देख सका। क्यों कि उस की चाबी नहीं मिल सकी। परन्तु सूचि बतलाती थी कि हस्तलिखित पुस्तकें साधारण प्रकार की थीं। एक दूसरे अन्य संग्रहालय में, जो हस्तलिखित पुस्तक संग्रह के लिये प्रसिद्ध था, मुझे केवल एक तालिका मात्र दिखलाई गई। साथ ही मैंने परीक्षणार्थ कुछ हस्तलिखित पुस्तकों की नुंध ली। परन्तु उनमें से बहुत कम पुस्तकें मेरे निवास स्थान पर लाई गइ। ऐसा मुझे बताया गया कि जो आदमी इन्हें मेरे पास लाया था वह चुपचाप ही उन हस्तलिखित पुस्तकों को बड़ी संख्या में बेच रहा था। इतने विशाल मौलिक प्राचीन संग्रह में, अब जो बची थीं, उनकी संख्या नगण्य रह गई। दो पुस्तक संग्रहों में कुछ बहुत ही प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ हैं।

१०– मेरी प्रथम यात्रा के सिलसिले में मुझे बताया गया कि उज्जैन के कुछ संग्रहालयों की सूचियां ग्वालियर दरबार के विशेष आदेश से बना ली गई हैं और यह विश्वास दिलाया गया कि वे मेरे निमित्त ही बनाई गई थीं। इनके लिये मैंने अपनी दूसरी यात्रा के पूर्व, पाने की चेष्टा की परन्तु ये मुझे अपनी दूसरी यात्रा के समाप्त करने पर बम्बई में मिलीं। साथ ही मुझे मन्दसौर तथा अन्यान्य अप्रसिद्ध स्थानों के संग्रहालयों की सूचियां मिलीं। उज्जैन से प्राप्त सूचियां दो या तीन हैं। इनमें से कोई सी भी मेरे पास पहले भी आती तो कोई उपयोग में नहीं आती।

११– इनमें के कुछ विशेष महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ निम्नलिखित हैं:—

हेरम्बोपनिषद्।

पञ्चीकरणोपनिषद् – भवदेव कृत।

मण्डल ब्राह्मण पर टीका – सायण कृत।

षडङ्गव्याख्या – भवदेव कृत।

अष्टाध्यायी ब्राह्मण भाष्य – सायण कृत।

यज्ञ सम्बन्धी साहित्य के कई ग्रन्थ।

सर्वानुक्रमणिका परिभाषोदाहरण।

आपस्तम्ब-सूत्र वृत्ति – विष्णु भट्ट कृत। पुष्पिका में ग्रन्थकर्त्ता का नाम चौण्डप लिखा है।

शङ्कर के संक्षेप सार (वेदोच्चारण से सम्बन्धित) पर टीका – विनायक भट्ट उपाध्याय कृत।

चातुर्ज्ञान।

बौधायन कल्पसूत्र पर टीका – सायण कृत (इण्डिया ऑफिस पृ० ५१ ए)। हस्तलिखित प्रति जो मैंने देखी उसके प्रारम्भिक पद्य में, 1 'त्रयीमंत्रमयी कल्प' और 'षिक्तः' पढ़ा, जब कि इण्डिया ऑफिस स्थित हस्तलिखित प्रति में 'त्रयीजगत्रयी कल्प' और 'षिक्त' उल्लेख है।

आश्वलायन गृह्यसूत्र भाष्य – श्री देवस्वामी सिद्धान्त (न्ती) कृत।
बौधायनस्वर्ग-द्वारेष्टिप्रयोग – ढुण्ढिराज कृत।
बौधायन-कपालकारिका भावदीपिका – नारायण ज्योतिष कृत।
सादस्यतत्त्वदीप – श्रीपति के पुत्र वासुदेव द्विवेदी कृत।
अग्निहोत्रकर्म मीमांसा।
अग्निष्टोमोपोद्घात – द्रविड़ रामचन्द्र कृत।
बौधायन बृहस्पतिसवकारिका – गोविन्द कृत।
कुण्डमाला – जगदीश कृत।
मूल्याध्याय पर टीकायें – विट्ठल के पुत्र बालकृष्ण और दीक्षित कामदेव रचित।
आश्वलायन श्रौत-सूत्र पर टीकायें – देवत्रात और सिद्धान्तीकृत।
बौधायनचयनसूत्रव्याख्या (महाग्निसर्वस्व) – वासुदेव दीक्षित कृत।
बौधायनशुल्वसूत्र दीपिका – द्वारकानाथ यज्वन् कृत।
बौधायनश्रौत सर्वस्व – शेषनारायण कृत।
तैत्तिरीयस्वरसिद्धान्तचन्द्रिका – श्रीनिवास कृत।
सामसूत्रवृत्ति।
बौधायनश्रौतसूत्र।
भारद्वाजसूत्रपरिभाषा।
(ऋग्वेदीय) पौण्डरीक हौत्र प्रयोग।
हौत्रालोक – श्रीशिवराम कृत।
आश्लायनसूत्रानुसारि प्रयोग – बिष्णुगूढस्वामी कृत।
दशरात्रप्रयोग – विष्णुगूढ स्वामी कृत।
पारस्करगृह्यसूत्रविवरण – रामकृष्ण कृत।
परशुरामकल्पसूत्र पर टीका – रामेश्वर कृत।
लघुकारिका – विष्णुशर्म कृत।
अग्निमुख (सत्याषाढ़ी आपस्तम्ब)।
भारद्वाज या परिशेषसूत्र।
प्रतिज्ञासूत्र – ज्योत्स्ना।
(यजुः) सांम्प्रदायिक चातुर्मास्यप्रयोग।
स्नानसूत्रभाष्य – याज्ञिकचक्रचूडामणिछागकृत।
कात्यायन श्रौत सूत्रभाष्य और (यजुर्वेदीय) श्राद्धदीपिका – काशी दीक्षित कृत।
हौत्र प्रयोग – व्यंकटेशापरनामधेय नारायण कृत।

1 एगलिंग का इण्डिया ऑफिस कैटेलोग।

कपाल कारिका भाष्य – श्री गोपालोपाध्याय के पौत्र पुरुषोत्तम के पुत्र मौद्गल्य-मयूरेश्वर कृत ।

दर्शपूर्णमासपदार्थदीपिका – वेणीराजोपनामक नारायण भट्ट के पौत्र नरहरि के पुत्र काण्व साम्राज भट्ट कृत ।

कात्यायन श्रौत सूत्रपद्धति – पद्मनाभ कृत ।
पौण्डरीक सम्बन्धी कुछ पुस्तकें ।
प्रयोगदीपिका – बलभद्र के पुत्र देवभद्र कृत ।
इष्टकापूरणभाष्य (कात्यायनीय) – अनन्त कृत ।
चयन पद्धति – उत्कलदेशवासिश्रीनरहरि कृत ।
आधानादि चातुर्मास्यान्त प्रयोग (काण्व) ।
विष्णुशतपदीस्तोत्र विवरण – रामभद्रकृत ।

गणपति सहस्रनाम व्याख्या – नारायणकृत, हस्तलिखित पुस्तक का समय (शकवत्सर) १३३६ जय ।

संस्काररत्नमाला भाष्य – गोपीनाथ कृत ।
स्मृतिकौस्तुभ – राजधर्म ।
दिनकरोद्योत – व्यवहार ।
कालनिर्णयदीपिका – नृसिंह कृत, १३३१ (शक) विरोधी नामक सम्वत्सर में रचित ।
आचार रत्न – लक्ष्मणभट्ट कृत ।
मातृगोत्रनिर्णय – लौगाक्षिकृत ।
दर्शपूर्णमास प्रयोग – गोविन्दशेष और अनन्तदेव कृत ।
मनुस्मृतिटीका, मनुभावार्थ चन्द्रिका या दीपिका – रामचन्द्र कृत ।
अनालम्बुकायाः कर्मकरणविचाराः ।
दानभागवत – वर्णि कुबेरानन्द कृत ।
द्व्यामुष्यायण दत्तक निर्णय – विश्वनाथ कृत ।
दत्तक कुतूहल – दैवज्ञ पुरुषोत्तम पण्डित कृत ।
पद्मपद्मिनी प्रकाश (धर्म०) एक उद्धृत भाग ।
शास्त्रदीप (धर्म ०) ।
प्रयोगसार – विश्वनाथ कृत ।
मुहूर्त्त मार्त्तण्ड टीका – चातुर्मास्ययाजी अनन्तदेव कृत ।
संध्याविवरण – श्रीरामाश्रम कृत ।
विद्यागोपाल चरणार्चनपद्धति – लक्ष्मीनाथापरनामक चिदानन्दनाथ कृत ।
प्रायश्चित्तचिन्तामणि (अपूर्ण) ।
प्रासाद प्रतिष्ठा – महाशर्मकृत ।
ज्ञानदीपिका (प्रायश्चित्त) – शङ्कराचार्य कृत ।
दामोदरपद्धति (धर्म) ।

दानवाक्य समुच्चय – योगीश्वर कृत 1।

रूपनारायणीय – उदयसिंह राजराज कृत। 'रूपनारायण' उदयसिंह के एक बिरुद को बताता मालूम होता है। क्यों कि यह प्रतापरुद्र 'गजपति' के बहुत से बिरुदों में से एक है जिसके नाम पर प्रतापमार्त्तण्ड का निर्माण किया था। मिथिला में वैकल्पिक नाम वाले जिनके अन्त में 'नारायण' आता है, कई एक राजा हुए। ऐसे वैकल्पिक नाम वाले राजाओं में एक रूपनारायण है (डफकृत क्रोनोलोजी पृ० ३०५)। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में रूपनारायणीय की एक हस्तलिखित प्रति है ' जिसका समय डा० आफ्रेट ने सन् १६५० ईस्वी बताया है। इसलिये इस पुस्तक की समाप्ति १५३० ईस्वी में होनी चाहिए।

गायत्रीविवृति – श्री प्रभूताचार्य कृत।

आचारदीपिका – दीक्षित गोविन्द के पुत्र नारायण कृत।

प्रतापमार्त्तण्ड – पुरुषोत्तमदेव 'गजपति के' पुत्र प्रतापरुद्र कृत। यह 'गजपति' और रूपनारायण जैसे बिरुदों से अलंकृत है। उनमें से एक बिरुद 'नवकोटिकर्णाटक कलवरगेश्वर' है। हाल ने कल के बदले में केरल पढ़ा मालूम होता है या कल को गलत पढ़ लिया हो और उन्हें पता नहीं कि वरग का क्या उपयोग हो (कण्ट्रीब्यूशन, पृ० १७४)। मुझे विश्वास है कि कलवरग कुल्बर्ग है।

दानप्रदीप –भट्ट माधव कृत। गुजरात में करण के राजा राघव ने ग्रन्थकर्त्ता के पूर्वज वासुदेव को आमन्त्रित किया था जो दधिवाहन से आया था। वह टोलकीया जाति का औदीच्य था। वासुदेव के वंशजों का क्रम इस प्रकार रहा है:—नरसिंह, दीघ, राम, विष्णुशर्म्मा और भट्टमाधव।

गृह्यप्रदीपकभाष्य – श्रीपति के पौत्र और श्रीकृष्णजी के पुत्र नारायण द्विवेदीकृत।

स्मार्तोल्लास – पुष्करपुर 'निवासी' निम्बाजी के पुत्र शिवप्रसाद पाठक कृत। शक १६१० या १६६० (खगो नृपति) शक में इसका निर्माण हुआ। इसी ग्रन्थकर्त्ता द्वारा रचित एक प्रतिष्ठोल्लास, उपरितन भाग में (पृष्ठ ४ पर) देखा गया है और मध्य प्रान्त में कीलहोर्न के हस्तलिखित पुस्तक सूचिपत्र में यह श्रौतोल्लास नाम से भी मिलता है।

धर्मशास्त्र सुधानिधि (देखिये पृष्ठ ४) प्रायश्चित्त मुक्तावली – भारद्वाज महादेव भट्ट के पुत्र दिवाकर कृत।

संस्कार गणपति, काण्ड १ व २ और श्राद्ध गणपति।

काण्व कण्ठाभरण औपासनविधि – वाजसनेयि अनन्त भट्ट कृत।

पर्व निर्णय – श्री हरिशङ्कर के पौत्र और 'पाठक' रामचन्द्र के पुत्र गंगाधर कृत।

रुद्रकल्पद्रुम – उद्धव के पुत्र अनन्तदेव कृत।

स्वानुभूतिनाटक – त्र्यम्बक पण्डित के पुत्र अनन्त पण्डित कृत। हस्तलिखित प्रति का सम्वत् १८०५ है।

गद्यारविन्द वैजयन्ती - धर्माधिकारी नन्दपंडितके पौत्र और वेणी पंडितके पुत्र गोपीनाथ कृत।

1 ये और ऐसे ही अंक परिशिष्ट २ में उद्धृत ग्रन्थांश को बताते हैं।

भावविलास – रुद्रकवि कृत ।
विश्वेशलहरी – खण्डराज कृत ।
हितोपदेश टीका – गोकुलचन्द्र कृत ।
हनुमन्नाटक-टीका – राघवेन्द्र कृत, १५३० वर्ष में रचित सम्वत् का नाम नहीं है ।
वृत्तमुक्तावली – मल्लारि कृत ।
काव्यप्रकाश दीपिका ।

काव्यप्रकाश टीका, काव्यादर्शविवेकिनी – श्री पद्मनाभ के 'पुत्र' नृसिंह के पौत्र श्रीरे (या ये) ल्हदेव कृत । हस्तलिखित प्रति अत्यन्त प्राचीन है ।

काव्यप्रकाश टीका – श्री सरस्वती तीर्थ (या नरहरि) रचित ।
छन्दःकौस्तुभ – श्री विद्याभूषण कृत † ।
छन्दःकौस्तुभ – राधादामोदर कृत विद्याभूषण की टीका समेत † ।
मीमांसार्थ प्रदीप – कारवशंकर शुक्ल कृत ।
अंगत्वनिरुक्ति (मीमांसा) – मुरारि कृत ।
मयूख मालिका – सोमनाथ कृत ।

मीमांसार्थप्रकाश – केशव पौत्र अनन्त पुत्र श्री केशव कृत । यह (सुरेश्वर) वार्त्तिकसार वेदान्तोपनिषद् भी कहा जाता है । (बर्न तञ्जोर, पृ० ६५ ए)

महावाक्य विवरण, आनन्द निष्ठाष्टक और पञ्चदशोपनिषद् – श्री रामचन्द्र कृत ।
नन्दिकेश्वर कारिका विवरण ।
कैवल्योपनिषद्दीपिका – श्री विद्यारण्य कृत ।
वाक्यसुधा पर टीकायें – ब्रह्मानन्द भारती और शङ्कर कृत ।
लघुवाक्य वृत्ति टीका ।
विवेक सार टीका – वेदान्तवल्लभ लक्ष्मीराम त्रिवेदी कृत ।
पाखण्ड मुखमर्दनचपेटिका – श्री विजयरामाचार्य कृत ।
भगवद्भक्तिविलास – श्री गोपालभट्ट कृत ।
अधिकार संग्रह – वेङ्कटनाथार्य कृत । भाव प्रकाशिनी टीका श्रीनिवास रचित सहित ।
विशिष्टाद्वैतराद्धान्त – श्री निवासदास कृत ।
भिक्षुगीता केवल दो ही पृष्ठ हैं । आरम्भ – द्विजउवाच नायं जनो मे सुखदुःखहेतुः ।
सिद्धसिद्धान्त पद्धति – श्री गोरक्षनाथ कृत ।
अष्टाङ्ग टीका – अरुणदत्त कृत ।

सिंहसुधानिधि – काशीराज के कुटुम्बज भारत शाह के पुत्र बुंदेलखंड के राजराज देवीसिंह कृत ।

योगपयोनिधि – महेश भट्ट कृत ।

† ये त्रिभिन्न स्थानों में, दो भिन्न २ दिनों में दिखाई गई । इनके नाम जैसे मैंने विवरण में दिये हैं वैसे ही मिलते हैं (पृष्ठ ४५ और ४७ भी देखिये) ।

शार्ङ्गधर संहिता – काशीनाथ वैद्य रचित टीकासह।
सुदर्शनसंहितायां पार्वतीश्वरसम्वादे उग्रास्त्र विचार।
यौवनोल्लास – उमानन्द नाथ कृत।
मृत्युलाङ्गलविधि (मंत्र)।
रत्नदीपिका – चण्डेश्वर कृत ।

नर्तन निर्णय – कर्णाटक के पुण्डरीक विट्ठल कृत। अन्त में ग्रन्थ कर्त्ता ने राग चन्द्रोदय नामक अपने एक ग्रन्थ का उल्लेख किया है।

१२ – उज्जैन में अपने हस्तगत कार्य को समाप्त कर मैंने प्रथम अवसर पर जैसलमेर के लिये प्रस्थान किया। पूर्व वर्ष (सन् १६०४) के अगस्त मास में स्टेट के दीवान महोदय ने मुझे यह लिखते हुए पूछा कि श्वेताम्बर जैन कान्फ्रेन्स का प्रस्ताव है कि जैसलमेर के समस्त जैन पुस्तक भण्डारों की पुस्तक सूचि बनाई जाय। उनने साथ में एक आदर्श प्रतिलिपि की प्रति मुझे भेजकर मेरी तरफ से कुछ आवश्यक सुधार बधार के परामर्श मांगे। मैंने यह समझते हुए कि कान्फ्रेन्स अपने लिये सूचिपत्र बना रही है, यह सुझाव दिया कि प्रत्येक हस्तलिखित पुस्तक. जो महत्त्वपूर्ण हों उन के आदि और अन्त के भागों के सार एवं ऐसे ग्रन्थों के कलेवर के वे अंश जिनमें ऐतिहासिक सूचना पाई जावे, अवश्य ही जोड़ दिये जांय। परन्तु पुस्तक सूचि निर्माण का काम खटाई में पड़ गया। क्यों कि उस समय जैसलमेर के जैन सम्प्रदाय वालों तथा जैन श्वेताम्बर सभा के प्रतिनिधियों के बीच मतभेद हो गया। अपने जैसलमेर पहुंचने पर मुझे पता लगा कि समझौता हो चुका और प्रमुख भण्डार में उन सम्पूर्ण हस्तलिखित पुस्तकों के सम्बन्ध की पुस्तक सूची टेबुलर आकार में (पूर्व परामृष्ट भागों के जोड़े बिना) बनाली गई। परंतु आगे का कार्य कुछ नये मतभेद के पहलू उठ खड़े हो जाने से फिर स्थगित सा हो गया।

१३ – जैसलमेर पहुँचने के बाद घण्टे भर में ही मैं कार्य में लग गया। मैं दीवान साहब से मिला और उन्होंने एक अध्ययनशील एवं प्रौढ़ पण्डित को बुला भेजा जिसे अधिक सद्भावनापूर्ण वातावरण की अवस्था में, पूर्व वर्षों में, भलीभांति सुरक्षित उस भण्डार में, सरलता से जाने दिया जाता और वह वहां से हस्तलिखित पुस्तकें भी अपने लिये ले लिया करता। वह इस बात से खूब परिचित था कि हस्तलिखित पुस्तकों का कौनसा संग्रह उसमें है। उसने आते ही मेरे लिये भण्डारों की निम्नलिखित सूची तैयार कर दी :—

१–बड़ा भण्डार जैनों का जो सम्भवनाथ मन्दिर के नीचे (एक अन्धेरी भूगर्भगत गुफा में) स्थित है।

२ – भण्डार – खरतरगच्छ के बड़े उपाश्रय में।
३ – संग्रहालय – थिरुसाह के घर में।
४ – भण्डार – तपागच्छ के उपाश्रय में ।
५ – ,, लोंकगाच्छ के उपाश्रय में।
६ – ,, आचार्य गच्छ के सम्प्रदाय का।
७ – संग्रह – तलोटिका व्यासों का।
८ – राज्यकीय संग्रहालय – अक्षय विलास राजमहल में।

९ – संग्रहालय – यति डूंगरसिंहजी का।

१० – संग्रहालय – वत्सपाल पुरोहित का।

१४ – यहां तुलना के लिये डाक्टर भांडारकर महोदय द्वारा १८८३-८४ की अपनी रिपोर्ट पृष्ठ १ में दिये गये पाटण के जैन पुस्तक संग्रहालयों के विवरण को पढ़ना अत्यधिक मनोरञ्जनकारी होगा। "जैनों का प्रत्येक गच्छ या सम्प्रदाय जो किसी शहर में रहता है अपने दीक्षित साधुओं के अल्प समय तक निवास के लिये एक स्थान रखता है और प्रत्येक उपाश्रय के साथ लगा हुआ एक बड़ा या छोटा पुस्तकालय भी होता है। यह पुस्तकालय सम्पूर्ण गच्छ की सम्पत्ति के रूप में होता है और इसका दायित्व उस सम्प्रदाय के प्रमुख सद्‌गृहस्थवर्ग के हाथों में होता है। जब कभी एक साधु उस उपाश्रय में स्थायी रूपेण निवास करने लगता है तो पुस्तकालय उसकी देखरेख में आजाता है और व्यवहारतः वह स्वामी बन जाता है।"

१५ – उपाश्रय और पुस्तकालय प्रायः उन गलियों और पाड़ों के नाम से ही पुकारे जाते हैं, जहां इनकी स्थिति होती है। परन्तु जैसलमेर एक छोटा शहर है, उसमें न अधिक गलियां और न पाड़े ही हैं और ऊपर की सूची से यह देखा जा सकता है कि उपाश्रयों के नाम गच्छों के ऊपर रक्खे गये हैं। सम्भवनाथ मन्दिर में अभी कोई जैनयति नहीं रहता। परन्तु कुछ वर्षों पूर्व एक जैनयति सचमुच इसके अन्तर्गर्भ गृहस्थित पुस्तक संग्रह का स्वामी था ‡। वह मुझे ऊपरवाली सूची देने वाले पण्डित का घनिष्ट मित्र था अतः उसने उसे इस संग्रह को देखने की अनुमति दे रक्खी थी। इस समय पुस्तक भण्डार पूर्णरूप से पञ्च (ट्रस्टी) लोगों के हाथ में है। ऐसे भण्डारों के सम्बन्ध में जो जैसलमेर एवं अन्य स्थानों पर है ऐसी प्रथा है कि प्रत्येक व्यक्तिगत ट्रस्टी उस भण्डार के अपना ताला और कुंजी रखता है। और जब तक सब कुंजियां एक साथ नहीं लाई जातीं कोई भण्डार नहीं खोला जा सकता। ऐसी परिस्थितियों में, ऐसा होता है कि जब तक एक भी पञ्च ना करने वाला होगा यदि जबर्दस्ती ताला न तोड़ा जाय तो भण्डार खुल ही नहीं सकता। ऐसी बात जैसलमेर के बड़े भण्डार के विषय में मेरे साथ दो बार हुई। यह इस बिना पर नहीं कि किसी भी पञ्च को मेरे कार्य या बेहतर खोज के सरकारी काम को आगे बढ़ाये जाने से इनकारी हो; बल्कि केवल इसलिये कि उन लोगों में से एक ट्रस्टी का कान्फरेन्स के कार्य को चालू रखने देने में घोर विरोध था। कान्फरेन्स ने जिस पण्डित को सूचिपत्र तैयार करने का कार्य भार दिया था वह मुझे सहायता देने को तैयार हो गया और मैंने उसका यह सहयोग

‡ ऐसे साधु लोग साधारणतय जाति या संस्कृत में यति शब्द से कहे जाते हैं। यति का मुख्य रूप से वह अभिप्राय है जो पुरुष दुनियां से विरक्त जीवन व्यतीत करे। परन्तु प्रायः वर्तमान यति लोग गृहस्थ जीवन यापन करते हैं जिनके पुत्र कलत्र हैं और वे ब्याज पर रुपया दिया करते हैं। केवल वे वैवाहिकविधि विधानपूर्वक नहीं सम्पन्न करते। फलतः अब अस्मिताशाली जैन गृहस्थ लोग ऐसे यति या जति और संसार से विरक्तिशील साधुओं के बीच भेद करने लग गये हैं। पिछले विरक्तिशील पुरुषों को वे साधु के नाम से पहचानते हैं। दोनों के प्रति प्रदर्शित सम्मान भी एक सा नहीं होता यद्यपि पहली श्रेणिवाले व्यक्तियों का न्यूनाधिक रूप में प्रभाव है।

एक बात और भी कही जा सकती है। मुझे कुछ जैन यति वैष्णव या विष्णु के भक्त मिले। यह देखा जाता है कि पूर्वी हिन्दुस्तान में जैन लोग प्रसिद्ध रूप से वैष्णव और अवैष्णव में विभाजित हैं। (इण्डि० एण्टी० भा० १९ पृ० १६४)।

स्वीकार किया। परन्तु उस खास व्यक्तिने उसकी उपस्थिति पर आपत्ति की, जब कि दूसरे पञ्च उसके पक्ष में थे। ऐसे अवसरों पर बाध्य होकर मुझे दीवान साहब को कष्ट देना पड़ता। फिर भी उन्होंने अपने घरेलू धन्धों, रोग और नियत राज्य कार्य के झमेलों में व्यस्त होने पर भी, तुरन्त ऐसे मौकों पर सभी सम्भव सहायता मुझे दी। मेरे जैसलमेर में निवास करते हुए सम्पूर्ण कार्य को सम्पादन करने का श्रेय मुख्य रूप से उनकी सहायता को है। मेरे ठहरने के अन्तिम दिनों में तो उन्हें रेजिडेण्ट महोदय से मुलाकात करने को जोधपुर जाना पड़ा। परन्तु तो भी उनकी अनुपस्थिति में एक मुसलमान सज्जन श्री नियाज अली ने, उनके स्थानापन्नरूप में, मुझे अपनी पूरी सौहार्दपूर्ण सेवायें अर्पित कीं। दीवान महोदय उन लोगों की रग रग जानते थे अतः संग्रहालय में प्रवेश करने के सम्बन्ध में मुझे लिखने के पहले उन्होंने दूरदर्शिता से सभी पञ्चों द्वारा एक सम्मिलित शर्तनामा (एग्रीमेण्ट) लिखवा कर हस्ताक्षर करवा लिये थे।

१६ – मेरे जैसलमेर पहुंचने के कुछ दिनों पहिलेही एक सज्जन, जो वहीं का रहने वाला था परन्तु कराची म्युनिसिपैलिटी की नौकरी कर रहा था, छुट्टी पर जैसलमेर आया हुआ था। यह मुझे बताया गया कि इस स्थान पर मेरे कार्य को आगे बढ़ाने में उसका प्रभाव अधिक लाभकारी सिद्ध हो सकेगा। परन्तु उसका अवकाश समय व्यतीत प्रायः होचुका था और वह जल्दी ही कराची जाने वाला था। श्रीकलेक्टर महोदय कराची ने मेरे अनुरोध करने पर, कराची म्युनिसिपैलिटी (नगरपालिका) के सभापति के रूप में, उसके अवकाश काल को कुछ समय तक के लिये और बढ़ा दिया। इसलिये, उस आदमी ने, और जैन कान्फरेन्स के पण्डित तथा दूसरे स्थानीय पण्डित ने जिसका जिक्र ऊपर किया गया है, मुझे निरन्तर विभिन्न प्रकार से सहायता प्रदान की। मुश्किल से ही कोई राज्यकर्मचारी इस बात को जानता होगा कि जैसलमेर का राजकीय हस्तलिखित पुस्तक भण्डार कहाँ है या कोई राजकीय हस्तलिखित पुस्तक भण्डार है भी कि नहीं। परन्तु ऊपर बताये गये तीन पण्डितों की दी हुई सूचि से यह निश्चित था कि भण्डार अवश्य है, और फलतः यह एक काठ के बकस में बन्द किया हुआ मिल भी गया, जिसे कई वर्षों तक खोला ही नहीं गया था। वास्तव में यह संग्रह न बहुत बड़ा है, न साहित्यिक दृष्टिकोण से वैसा कुछ महत्त्वपूर्ण ही है कि जिसमें हस्तलिखित पुस्तकों की अलभ्य प्रतियां हों। यह भण्डार, जिसे डा० बूहलर महोदय को दिखाने के लिये खोला गया था, मुझे देखने की अनुमति दी गई और श्री बूहलर को दिखाने के बाद से कोई ३० वर्ष से अधिक का समय होगया है, यह ताला चाबी मारकर बन्द ही पड़ा रक्खा गया।

१७ – उपरोक्त सूचि में उल्लिखित भण्डारों में प्रथम भण्डार के सम्बन्ध में श्री डा० बूहलर ने अपनी संक्षिप्त रिपोर्ट १८७३–७४ (गफ के रिकार्डस् पृष्ठ ११७) में उसका पारसनाथ मन्दिर के नीचे होना लिखा है। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि यह सम्भवनाथ मन्दिर के अधस्तन भाग में है। दोनों मन्दिर एक दूसरे के जोड़ में ऐसे बने हुए हैं कि एक ही मन्दिर के वे दो भाग मालूम होते हैं। सम्भवनाथ मंदिर सम्वत् १४९४ विक्रम वर्ष में अर्थात् ईशवीय सन् १४३८ में बना था, जब, जैसा कि मन्दिर के एक उत्कीर्ण लेख से स्पष्ट है, वैरिसिंह सिंहासनासीन थे। इसका और दूसरे उत्कीर्ण लेखों का संक्षिप्त विवरण मैंने एक परिशिष्ट, में जो इसी रिपोर्ट से संलग्न है, दिया है। ये सब मैंने और सहकारी पण्डितों ने जैसलमेर में देखे हैं। दुर्भाग्य से मैं इन लेखों की छाप (इम्प्रेसन) के लिये अपने साथ सामग्री नहीं ले गया था। क्यों कि मेरा अनुसन्धान एक दूसरे

ही ढंग का था। साथ में ऐसे उत्कीर्ण लेखों को भी मुझे पढ़ना होगा इसकी मैंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी। अन्ततः मैंने सभी उत्कीर्ण लेखों को पढ़ लिया और उनकी प्रतिलिपियां मेरे पण्डित ने कर दीं। ऐसा करने में मुझे अपने अन्य सहयोगियों की पूर्ण सहायता मिली। इनमें कुछ तो बड़ी कठिनाई के साथ पढे गये। बहुत सी नकलें (प्रतिलिपियां) तो उस समय ली गईं जब मैं और और कार्यों में व्यस्त था और परिणामतः यह कार्य मेरे निरीक्षण में नहीं बनपाया। ऐसा मालूम होता है कि कहीं कहीं कुछ अक्षर छूट गये हों। फिर भी जो कुछ परिशिष्ट में संक्षिप्तरूपेण सारांश दिया गया है मुझे विश्वास है कि वह सब शुद्ध है।

१८ – कहना न होगा कि मेरे जैसलमेर पहुंचने के दूसरे ही दिन से सर्वप्रथम बड़े भण्डार का ही कार्य आरम्भ किया गया। एक सूचि के न होने से मुझे इस संग्रह की प्रत्येक हस्तलिखित पुस्तक की जांच करने को बाध्य होना चाहिए था और इसमें महीनों तक समय लगाने की जरूरत होती। श्री डा० बूहलर अपनी संक्षिप्त रिपोर्ट १८७३–७४ (गफ के रिकोर्डस् पृष्ठ ११८) में लिखते हैं कि श्री डा० जैकोबी की सहायता से उन्होंने भण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थ की प्रत्येक प्रति को देखा और साथ २ रघुवंश के कुछ अंशों की टीका नकल की एवं अपने हाथों से बिल्हण के विक्रमाङ्कदेव चरित की सम्पूर्ण पुस्तक की प्रतिलिपि की। परन्तु मुझे सन्देह है कि उन्हें भण्डार की प्रायः बाईस सौ २२०० संख्या जितनी हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रतियां दिखाई गईं कि नहीं। वास्तव में भण्डार के सम्बन्ध में उनका निम्नलिखित विवरण इस विषय में बहुत ही निर्णयात्मक है:—

"एक यति द्वारा ६० वर्ष पूर्व बनाई हुई 'बृहज्ज्ञानकोष' की एक प्राचीन सूचि के अनुसार उस समय इसमें ४२२ भिन्न २ ग्रन्थ थे। फिर भी जैसा मैंने देखा, यह स्पष्ट है कि वह सूचि बड़ी असावधानी से बनाई गई है और उस समय पुस्तक संख्या ४५० से ४६० तक पहुंच गई थी। इस समय तो यह केवल किसी समय के एक बड़े सुन्दर संग्रहालय का अवशेषमात्र रह गया है। भण्डार में अब भी प्रायः ४० पोथियां या बण्डल हैं जिनमें सुरक्षित ताड़ पत्र की हस्तलिखित प्रतियां हैं। साथ ही बहुत अधिक अस्तव्यस्त ताड़पत्र पर अङ्कित पुस्तकें हैं। ‡ ४ या ५ छोटे बक्स हैं जिनमें कागज पर लिखे हस्तलिखित ग्रन्थ हैं और कुछेक दर्जन कागज पर लिखे ग्रन्थों के फटे और बिखरे पन्नों के बण्डल हैं।"

सचमुच ही जैसा यहां बताया गया है अब भी बिखरे और टूटे ताड़ पत्रों का ढेर और कुछ बण्डल हैं जिनमें फटे पुराने बिखरे कागज हैं। परन्तु यह बड़ा भण्डार स्थित पुस्तकालय अन्य भण्डारों से निश्चय ही ताड़ पत्र और कागज पर लिखे हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रह के लिये अपेक्षाकृत श्रेष्ठतर है। श्री डा० बूहलर सारी हस्तलिखित प्रतियों को किस कारण नहीं देख सके यह उनके वर्णन से ही स्पष्ट होता है। "ओसवाल समाज का पञ्च जो भण्डार का अधिकारी है बहुत ही क्रुद्ध स्वभाव का है। उसके प्रति रावल को कभी कभी अनुरोध करना पड़ता है *। संग्रह का कुछ भाग दिखलाकर वह कह देता कि यही सब कुछ है बाकी तो फटे पुराने पन्ने हैं †।" कारण

‡ इण्डियन एण्टी०४, पृ० ८२। * इण्डि० एण्टी० ३ पृ० ६०।

† भण्डार के सम्यक्परीक्षण के बाद भी मुझे एक खाली स्तम्भ में पहले न देखे हुए कई अन्य हस्तलिखित ग्रन्थों का सुरक्षित होना बताया गया। इसी तरह एक ग्रन्थों के अच्छे संग्रह के ईंटों की दीवार के अन्दर चिन दिये जाने का उल्लेख जो पिटरसनने (अपनी रिपोर्ट, पृ० २ पर) किया वह यहां उल्लेखनीय मालूम देता है।

इसका यह होसकता है कि ग्रन्थ भण्डार के सम्पूर्ण संग्रह को दिखलाने की उसकी अनिच्छा हो या धैर्य का अभाव या दोनों ही बातें हों। जिसकार्य के लिये किसी प्रकार का भत्ता नहीं दिया जाता उसको करने के लिये कई दिन तक पुस्तकें दिखलाने को बैठे रहना बहुत धैर्य का काम है, और विशेष रूप से ऐसे आदमी के लिये जिसकी इसमें किसी प्रकार की दिलचस्पी नहीं होती। हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रतियों को निकाल कर देना और दूसरे लोगों के द्वारा उन सब को देखते जाना, ऐसा होना और भी अवाञ्छनीय होता है। अतः मैं जैसलमेर के एवं अन्य स्थानों के उन सभी यति महानुभावों और अन्य सज्जनों का कृतज्ञतापूर्ण आभार मानूंगा जिन्होंने इस प्रकार मेरी पूरी सहायता की। कभी कभी काम करते करते यह डर घरकर बैठता कि कहीं वे लोग धैर्य न खो बैठें। अतः मेरे अनुसंधान का कार्य जैसा मैं सोचता था उससे कम ही पूर्णता से समाप्त किया जासका।

१६ – डाक्टर श्री बूहलर के विवरण में, उपरोक्त अनुच्छेद में ही, १२० वर्षों से भी पूर्व बनाई गई एक प्राचीन सूचि का भी उल्लेख है। परन्तु अपना कार्य आरम्भ करने के प्रातः काल ही कान्फरेन्स के पण्डित ने मुझे सूचना दी कि उसने संग्रह की अधिकतर पुस्तकों की एक नई सूचि बना ली है। उसने यह भी बताया कि इसकी एक प्रति कान्फरेन्स के अधिकारियों के पास जयपुर भेज दी गई है और १ प्रति भण्डार में सुरक्षित है। तदनुसार मैंने पहले दिन उन पुस्तकों की जांच की जिनका सूचि-पत्र तैयार होना था और भण्डार की सुरक्षित सूचि को मैंने मांगा जो नई बनाई गई थी। उस दिन का मेरा कार्य समाप्त होने पर मैं सबेरे दूसरे दिन कुछ समय तक बैठा और मैंने २०० से कुछ अधिक हस्तलिखित पुस्तकों की संख्या, नाम, आदि लिखे और उनकी सूचि देखी। यह इसलिये किया गया कि विवरण के सम्बन्ध में मेरी जानकारी कुछ ठीक हो। ब्राह्मण ग्रन्थों के सम्बन्ध में सिवाय कुछ एक सूचना के, जैसे कि केवल संख्या, नाम और यह ग्रन्थ दूसरे दर्शन का है (जैनेतर धर्मानुयायियों का), सूचि में और किसी तरह का उल्लेख नहीं था। बात यह थी कि उस सूचि का सम्बन्ध तो केवल जैन कान्फरेन्स से था और वह केवल जैन साहित्य तक ही सीमित थी।

२० – हस्तलिखित पुस्तकों के निरीक्षण का कार्य दो यति महानुभावों के तत्त्वावधान में किया गया जिनमें एक आचार्यगच्छ और दूसरे खरतरगच्छ के थे। ये लोग अपने अपने उपाश्रयों से भण्डार में आया करते थे। दूसरे पञ्च लोगों की अवधानता बराबर रहा करती थी, जिनमें एक या दो हम लोगों के निरीक्षण समय में भण्डार में उपस्थित ही रहते थे। इस निरीक्षण कार्य को उन यति लोगों की सुविधा को देखते हुए मध्यान्ह से पहले हम लोग नहीं कर पाते थे। उनकी उपस्थिति नियत रूप से होसके इसलिये मैं अपने सम्वादवाहकों को, जो दीवान महोदय ने मेरे लिये रख छोड़े थे, उन्हें बुलाने के लिये भेज दिया करता। एक और बात यह भी थी कि यति लोग दूसरी बार अपना भोजन सूर्यास्त से पूर्व अपने हाथों बनाते थे। अतः जब मैं अपना कार्य आरम्भ करता उसके कुछ समय बाद ही वे लोग बारबार अपने जाने का बहाना कर मुझे अपना उस दिन का कार्य शीघ्र ही समाप्त करने को बाध्य करते थे। परन्तु मैं अपना काम यथाक्रम जारी रखता और उसे बन्द नहीं करता। जब मैं उनलोगों का विश्वासभाजन होगया तो वे लोग मुझे अन्तर्गर्भगृह से कुछ वस्तुएं, जिनकी मैं प्रतिलिपियां

बनाना चाहता, बाहर लाने देते थे। मैं अपने पण्डित के साथ विशेष यत्नपूर्वक नियत समय के बाद भी अपना काम करता ही रहता।

२१– संग्रह की दुरवस्था के विषय में इधर उधर बिखरे ताड़-पत्रों के ढेर और फटे हुए कागज पत्रों के ढेर को देखकर यही कहा जा सकता है कि समय और अनवधानता दोनोंने ही अपने आधिपत्य से वहां पर विनाश का कार्य आरम्भ कर दिया है। इस परिणाम का प्रभाव उन बृहदाकारवाली ताड़पत्रीय पुस्तकों की प्रतियों पर भी कम नहीं हुआ। प्रत्येक ताड़-पत्र की हस्तलिखित पुस्तक (जिन में एक या अधिक पुस्तकें लिखी हुई हैं) दो लकड़ी की पट्टियों के बीच बांधी गई है। फिर उसे एक कपड़े के बन्धन में बांधकर कई ऐसे बन्धनों को एक मोटे कपड़े में सुरक्षित रूप से लपेट कर रस्सी से ठीक तरह से बांध दिया गया है। इन बण्डलों को यथा-क्रम व्यवस्थित नहीं रक्खा गया है। क्यों कि लंबाई में ये भिन्न २ आकार के होने से इनको पत्थर के खानों में (जो जिसमें समागया उसे वहीं पर) रख दिया गया है। प्रत्येक बण्डल पर संख्या लगी है। परन्तु कुछ पर दो दो संख्यायें हैं; एक तो पुरानी संख्या है जिसको बिना काटे छोड़ दिया गया है, दूसरी नई है जो कान्फरेंन्स के पण्डित द्वारा लगाई गई है। इसलिये हमें पुस्तक निरीक्षण कार्य में कुछ सन्देह और उलझन का सामना करना पड़ा। इससे यह बात हुई कि कुछ हस्तलिखित ग्रन्थ, जिनको मुझे अवश्य जांचना चाहिये था, बिलकुल ही नहीं खोले जासके। सम्भवतः अशुद्ध संख्या या पुरानी संख्या जो उन बण्डलों पर लगी हुई थी वह मुझे पढ़कर सुनाई गई, जब कि मेरे द्वारा लिखी संख्या नूतन थी। ऐसे ग्रन्थों में, जिन्हें खोला नहीं गया कुछ तो ऐसे थे जिनके लेखन काल का मैं मिलान करना चाहता था। क्यों कि वे बहुत प्राचीन थे। डा० बूहलर ने सम्वत् ११६० की हस्तलिखित पुस्तक को अपने द्वारा देखी गई भण्डार की उन प्राचीन पुस्तकों में प्राचीनतम लिखा है (गफ पृ० ११७)। परन्तु नूतन सूचि के अनुसार उससे भी पुरानी, कम से कम सात, पुस्तकें उपलब्ध हुई हैं जिनका समय ६२४, १००५, ११२०, ११२७, ११३६, ११४४, और ११५५ सम्वत् है। इनमें से ११२७ और ११३६ सम्वत्सरों को मैंने मिलान कर देखा। दो प्रतियों का समय, सूचि देखते समय मेरे दृष्टिगोचर न होने से मैं अपने निरीक्षणार्थ दर्ज न कर सका। दो प्रतियां बिलकुल निकाली ही नहीं गईं और एक प्रति जिस पर सम्वत् ६२४ लिखा है हरिभद्र की विवृतिसहित "दशवैकालिक" की हस्तलिखित प्रति है, इसका समय मैं सरलता से नहीं खोज सका।

२२ – उपयुक्त हस्तलिखित पुस्तकों में से एक ग्रन्थ जो मुझे देखने को मिला उसका नाम है वस्तुपाल प्रशस्ति (वस्तुपाल की प्रशंसा में कविता) जिसके रचयिता श्री जयसिंह कवि हैं। इसका आरम्भ चालुक्यवंश के विवरण के साथ मूलराज प्रथम से हुआ है। मूलराज के विषय में यह बताया गया है कि उसने कच्छप को पराजित कर (सुकृतसंकीर्त्तन २, ६) सिन्धु-राज (सम्भवतः मालवराज) से युद्ध कर गौरव पदवी पाई। साथ ही दक्षिण के छत्तीसराज-वंशों द्वारा वह सेवित हुआ। भीमदेव के सिंहासनारूढ़ होते ही श्री (राजकीय गरिमा) ने भोज के बाहुपाश को, वाणी ने उसके मुख को और करवाल ने उसके हाथ को छोड़ दिया। जयसिंह सिद्धराज के घोड़ों के विषय में यह लिखा है कि उनके खुरों से उठी हुई धूलि ने मालवराज की कीर्ति रूपिणी स्त्री के मुख को म्लान कर दिया (सुकृत० २, ३४) कुमारपाल की ऐसी प्रशस्ति बतलाई गई है कि उसने जैन धर्म को अधिकाधिक संरक्षण एवं सहायता दी,

अर्णोराज (साम्भर के अधिपति) को भयभीत किया, कुङ्कण का घेरा डाला (सुकृतसंकीर्तन २, ४१ – ४३ और कीर्त्तिकौमुदी २, ४७ – ४८) और स्मररिपु (शिव, जिसने कामदेव को भस्म किया) महादेव की महिमा प्रशस्त की । अन्तिम विवरण का सम्बन्ध, सम्भवतः सोमनाथ मन्दिर के पुनर्निर्माण कार्य से है। भीमदेव द्वितीय ने, चालुक्य लावण्यप्रसाद को, अपनी कीर्ति को अधिकाधिक विस्तृत करने का कार्य सौंपा। चालुक्य लावण्यप्रसाद के पुत्र वीरधवल ने, भीमदेव से अपने लिये कोई सचिव का नाम बताने का अनुरोध किया। इसके उत्तर में भीमदेव ने वस्तुपाल और तेजःपाल का नाम प्रस्तुत किया जो उसके आश्रय में श्रीकरण के उच्च-पद पर आसीन (सम्भवतः मुख्य सचिव के पद पर) थे। साथ ही उनकी सेवायें भी वीरधवल के यहां हस्तान्तरित कर दीं। ऐसा करते हुए उसने दो वंशों का क्रम दिया है। यह सोमेश्वर के सुरथोत्सव (डा० भाण्डारकर की रिपोर्ट १८८३ – ८४, पृष्ठ २१) और सोमेश्वर रचित वस्तुपालप्रशस्ति, जो आबू पर्वत के तेजःपाल मन्दिर में उपलब्ध होती है, वर्णित राजवंशों से साम्य रखता है (कीर्त्तिकौमुदी, परिशिष्ट पृष्ठ १-१०)। कीर्त्तिकौमुदी के ३, ५१-५२ में ऐसा लिखा है कि लावण्यप्रसाद ने इन दोनों सचिवों के विषय में स्वयं सोचा; परन्तु अरिसिंह रचित सुकृतसंकीर्तन के सर्ग ३ के विवरण का अंश, जो इस प्रशस्ति के वर्णन से बहुत अधिक साम्य रखता है उसके अनुसार, भीमदेव का पितामह कुमारपाल भीमदेव को स्वप्न में दीखा और उसने यह सम्मति दी कि लावण्यप्रसाद को अपने प्रमुख सहायक के रूप में रक्खे; साथ ही उसे सब का स्वामी (सर्वेश्वर) बना कर वीरधवल को उत्तराधिकारी बना दे। जब दूसरे दिन प्रातःकाल भीमदेव ने यह प्रस्ताव पिता और पुत्र के सामने रक्खा तो वे राजी होगये और पुत्र ने भीमदेव से एक सचिव का नाम बताने का अनुरोध किया, जिसको भीमदेव ने प्रशस्ति में वर्णित कथन के अनुसार कहा है (डा० बूहलर का सुकृतसंकीर्तन पृ० ४२-४६)। दोनों भाईयों के पूर्वजों के सम्बन्ध में प्रशस्ति बतलाती है कि सोम, देवताओं में केवल तीर्थकृद् को पूज्य मानता था, विद्या के धुरन्धरों में अपने गुरु हरिभद्र को और स्वामियों में सिद्धेश को ही अधिक मानता था (सुकृत० ३, ५०)। यह हरिभद्र तत्त्वप्रबोध के कर्त्ता के रूप से अभिन्न ही हो सकता है (प्रायः सम्वत् १२२५) और सोमेश्वर कृत प्रशस्ति के ७० वें श्लोक में वर्णित सिद्धेश वास्तव में जयसिंह सिद्धराज है। जब वीरधवल मारव राजाओं (मारवाड़ के राजा लोग) पर आक्रमण करने के लिये चला, तब वस्तुपाल ने यदु सिंहन की सेना के समुद्र को अस्तव्यस्त किया। उसने नाभेय, जो शत्रुञ्जय का आभूषण है, के सामने इन्द्रमण्डप का निर्माण कराया। इसमें उसके ऐसे कई कीर्ति प्रख्यात कार्यों का वर्णन किया गया है। जैसे, शत्रुञ्जय, पादलिप्त नगरी और अर्कपालितक ग्राम जैसे सुन्दर स्थानों के सन्निकट बड़ी २ सुन्दर झीलों का निर्माण; उज्जयन्त पर्वत पर मन्दिरों का निर्माण। स्तम्भ प्रभु के मन्दिर का जीर्णोद्धार, जिसमें, नाभेय और नेमिनाथ की अकृत्रिम(बिना हाथ की बनी)मूर्त्तियां हैं। एक बार तेजःपाल ने अपने बड़े भाई से, श्री जयसिंह सूरि (प्रशस्ति के रचयिता) द्वारा उसको सुनाये गये काव्य का वर्णन किया, जिसके सुनने का अवसर जब वह सुव्रत की पूजा करने के लिये भृगुपुर (भड़ौच) गया, तब मिला था। इस काव्य में कवि ने सुव्रत के मन्दिर के लिये, बांस के स्तम्भों के स्थान पर २५ स्वर्ण-जटित स्तम्भों (कल्याण दण्ड) के लिये प्रार्थना की थी। इनके लिये वस्तुपाल तथा तेजःपाल की कीर्त्तिगाथा गाई गई है। इस प्रशस्ति का निर्माण उसी भेंट के उपलक्ष्य में किया गया है। अन्त

में जयसिंह ने अपना नाम दिया है और स्वयं को प्रभु सुव्रत के चरण कमलों के चञ्चरीक भ्रमर के रूप में बतलाया है।

२३ – इन हस्तलिखित ग्रन्थों में दूसरी महत्त्वपूर्ण पुस्तक है, हम्मीर-मद-मर्द्दन (हम्मीर के मान का मर्द्दन)–लेखक जयसिंह। यह भी ऊपर वर्णित पुस्तक के समान ही लकड़ी की पट्टियों के बीचमें बांधी हुई है। इस ग्रन्थ का नाम डॉ. बूह्लर को दिखलाई गई सूचि में दिया हुआ था परन्तु उन्हें ढूंढने पर इस पोथी का पता न चला। स्वर्गीय श्री एन० जे० कीर्त्तने, जिनकी दृष्टि में नयचन्द्रसूरि द्वारा लिखित हमीर काव्य की हस्तलिखित प्रति आई और जिसका उन्होंने सम्पादन किया, वे उसे, सूचि में बताये गये इस ग्रन्थ के समान ही समझते हैं। परन्तु अब इस हस्तलिखित पुस्तक की प्रति उपलब्ध हो गई है, अतः यह स्पष्ट है कि दोनों पुस्तकें समान नहीं हैं। नयचन्द्र सूरि कृत ग्रन्थ, हम्मीर की कीर्त्ति के गुणगान के लिए लिखा गया काव्य है। प्रस्तुत ग्रन्थ एक अर्द्ध ऐतिहासिक † नाटक है, जिसका प्रतिपाद्य विषय है हम्मीर का अभिमान चूर करना। प्रस्तावना में जो विवरण, ग्रन्थकार द्वारा दिया गया है, वह निम्न प्रकार है—

'पूर्व समय में भृगुनगरी में एक सूरि (जैन आचार्य) वीर सूरि नामक थे, जिनकी सुव्रत के चरणों में पूर्ण भक्ति थी। उसके जयसिंह नामक कवि एक शिष्य था जो परपक्ष के कवियों की बुद्धिरूपी समुद्र के लिये अगस्त्य था (अगस्त्य जो समुद्र को पान कर सुखाने वाले थे) और जिनके पाद पद्मों के सेवन की अभिलाषा सैंकड़ों जैनश्वेताम्बर (सिताम्बर) यति लोगों को रहा करती थी। उसने वीरधवल की, जो कि चालुक्यवंश के वन में कल्पतरु (यथाकाम इच्छा पूर्ण करने वाला) वृक्ष था, कीर्त्ति के अवतारभूत इस सुन्दर नाटक की रचना की। इस नाटक में नवों रसों की पूर्ण निष्पत्ति है।'

अन्त में नाटक वस्तुपाल को समर्पित किया गया है। उपरोक्त प्रशस्ति और इस नाटक में आया हुआ एक पद्य ‡ समान है।

इस विवरण से, इस नाटक के रचनाकार और ऊपर सूचित प्रशस्ति के निर्माता को पहिचान लेना सम्भव है। हस्तलिखित प्रति के अन्त में १२८६ सम्वत् का निर्देश है जो इस नाटक (रूपक) का निर्माणकाल हो सकता है।

मैंने इसकी एक प्रतिलिपि करवाई और उसके अधिकांश भाग की मूलप्रति से तुलना करवाई। परन्तु हस्तलिखित प्रति को पढ़ना कोई सरल कार्य नहीं था। एक काव्य के समान यह ग्रन्थ पद्यमय नहीं होने से छन्द का इस में कोई विशेष प्रयोग नहीं हुआ है। साथ ही इस का अधिकांश भाग गद्यमय और प्राकृतभाषानिबद्ध है और इस से कठिनाई दूनी बढ़ती है। इस कठिनाई के साथ, यद्यपि हस्तलिखित ग्रन्थ के सब पृष्ठ सुरक्षित अवस्था में है, फिर भी कम से कम आधे दर्जन पन्नों के अक्षर बिलकुल घिसे हुए हैं और कई पन्ने एक दूसरे की रगड़ से बिलकुल काले हो गये हैं।

इस रूपक का संक्षिप्त विवरण देना मनोरञ्जक होगा। इस रूपक का अभिनय, सर्व प्रथम स्तम्भेश्वर में भीमेश्वर के मेले पर किया गया बताया है। यह मही नदी के मुहाने पर दक्षिण

---

† यह बताना बहुत कठिन है कि नाटक में कितना सत्यांश है।

‡ मतिकल्पलता यस्य मनःस्थानकरोपिता। फलं गुर्जरभूपानां संकल्पितमकल्पयत्॥

पार्श्व में, उसके कुण्डल स्थान (एक कर्ण भूषण) की शोभा बढ़ाता है। जयन्तसिंह ने अपनी जनता के मनोरञ्जनार्थ नवों रसों से पूर्ण इस रूपक के अभिनय की आज्ञा दी बताई है। कारण यह बताया है, कि जनता को, अभिनेताओं द्वारा खेले गये केवल भयानक रसके प्रकरणों के देखने से, बहुत ही अरुचि हो गई थी। अतः इस रूपक का अभिनय प्रारम्भ किया गया। सूत्रधार, इस प्रशस्त अवसर पर, अपने प्रकरण की अभिनेय सामग्री को प्रस्तुत करने में, स्वयं को बधाई देता है। सभी अभिनेता बहुत अच्छे कलाकार हैं। जयन्तसिंह सचिव प्रमुख दर्शकों में हैं। इस नाटक का चरितनायक वीरता और गौरव गरिमा का स्थान श्री वीरधवल प्रभु है; साथ ही कवि जयसिंह सूरि की अनुपम कविप्रतिभा है। प्रस्तावनानन्तर वीरधवल और तेजःपाल परस्पर वर्तालाप करते हुए दिखाये गये हैं। प्रथम वीरधवल वस्तुपाल की प्रशंसा के पुल बांधता है और तेजःपाल वीरधवल की प्रशंसा के। इसी बीच वीरधवल, श्रीवस्तुपाल द्वारा एक अवसर पर प्रदर्शित बुद्धिचातुर्य की प्रशंसा करता है। यदुराजा की सेना ने सुदूरवर्त्ती स्थान से आकर लाट देश के स्वामी सिंह को भयभीत कर दिया है। भयत्रस्त मालव नरेश ने भी सिंह की शक्ति को, अपने सहयोग को बीच में ही हटा कर, और कमजोर बना दिया है। यह सहयोग उसे अपने मित्रमण्डल से मिलता था। ऐसी परिस्थितियों में, वस्तुपाल ने अपने चातुर्य से, सिंह को, जो पहले शत्रु था, वीरधवल का मित्र बना दिया। वीरधवल, संग्रामसिंह के षड्यन्त्र का, जो उसने वीरधवल के विरुद्ध किया था, वस्तुपाल ने किस तरह 'भण्डा फोड़' किया उसका भी वर्णन करता है। इसका दूसरे एक स्थान पर शंख नाम बतलाया गया है। यह सिन्धुराज का पुत्र और लाटदेश के राजा सिंह का भतीजा था। उस समय संग्रामसिंह, अपने पैतृक वैर को ध्यान में रख कर, सिंहण के सेनापतियों को अपने साथ ले गया, जब कि वीरधवल मरु (मारवाड़) राजाओं को पराजित करने में लगा हुआ था, और वह वीरधवल का पीछा करने लग गया। फिर वर्तमान परिस्थिति का अवतरण किया गया है। राजा सिंहण उसके विरुद्ध कूच कर चुका है। साथ ही उसके सेनारूपी समुद्र में नदियों की तरह अनेक राजा लोग आकर मिल गये हैं। सिंहण को सिन्धुराज के पुत्र ने ही ऐसी तैयारी के लिये पूर्व प्रेरणा दी और जिसकी ईर्ष्या वस्तुपाल के द्वारा की गई युद्धगरिमा के कारण और अधिक बढ़ गई। दूसरी ओर वीरधवल के विरुद्ध, तुरुष्क सेनापति ने, अपनी महती सेना से पृथ्वी को कंपाते हुए, आक्रमण कर दिया है। इतना ही नहीं मालवा के राजा ने भी, अपने सहायक करद राजा लोगों के साथ, वीरधवल से युद्ध ठानने का पक्का निश्चय किया है। चारों ओर से ऐसी परिस्थितियों के दबाव पड़ने पर भी, वह कहता है, कि वस्तुपाल के बुद्धिचातुर्य से उसे अवश्य ही इन कठिनाइयों से छुटकारा मिलेगा। अब वस्तुपाल प्रवेश करता है। वह राजा के कार्यों में तेजःपाल के पुत्र लावण्यसिंह द्वारा प्रदर्शित असीम अध्यवसाय और क्रियाशक्ति की प्रशंसा करता है। वह कहता है कि लावण्यसिंह ने अपने गुप्तचरों को प्रतिपक्षी राजाओं के पास भेज दिया है जहां उन्होंने उन विपक्षी राजा लोगों के सान्धिविग्रहिकों (युद्ध और शान्ति के सचिव) का पूर्ण विश्वास प्राप्त कर लिया है। वह यह भी कहता है कि चर लोग परपक्षी राजाओं की आंख का काम करते हैं। अतः वे राजा लोग उनके हाथों से खींची जाने वाली गुडिया के समान हैं। फिर पारस्परिक प्रशंसात्मक चर्चा होती है जिसमें वीरधवल द्वारा पञ्चग्राम के युद्ध में प्रदर्शित वीरता की तेजःपाल प्रशंसा करता है। तब वीरधवल यह घोषणा करता है कि उसकी इच्छा कम से कम हम्मीर वीर पर आक्रमण करने

की है। क्योंकि उसका अमात्य ही, अपने बुद्धिबल के प्रभाव से, अन्य सैकड़ों परपक्षी राजा लोगों के हराने में पर्याप्त है। वस्तुपाल सहमत हो जाता है। परन्तु एक भागने वाले शत्रु का पीछा करना चाहिए इसके विरुद्ध वह सकारण अपनी सलाह देता है। तब उसे वह यह परामर्श देता है, कि मरुदेश के राजा लोगों को, इसके पूर्व ही कि वे समीपवर्त्ती आ रहे म्लेच्छ चक्रवर्ती से अपना गठबन्धन कर लें, अपने पक्ष में, मिला लेना चाहिए। वह कहता है, कि इस प्रकार, म्लेच्छ चक्रवर्ती अपनी भयभीत बुद्धि से हक्का - बक्का हो जायगा; जब कि उसे पता चलेगा कि वीरधवल अत्यन्त निकट आ पहुँचा है। ऐसा कहते हुए वह अपने भाई तेजःपाल से कानाफूसी करता है। सम्भवतः यह कहने के लिये ही, कि वीरधवल बिना खूनखच्चर किये ही सफलता से युद्ध में विजयी बनेगा। इस समय तक मध्यान्ह हो जाता है और प्रथम अङ्क समाप्त होता है।

एक दीर्घकालीन नाट्य आरम्भ होता है जिसमें लावण्यसिंह (तेजःपाल का पुत्र) रङ्गमञ्च पर पदार्पण करता है। इस समय संध्या काल हो गया है और वह संध्याकालीन दृश्य का अति मनोरंजक वर्णन करता है। इसके बाद वह वर्तमान स्थिति पर विचार करता है। वस्तुपाल के आक्रमण कर देने से मरुदेश के राजा लोग, म्लेच्छ राजा की सेना द्वारा उनके प्रदेश में म्लेच्छाक्रमण हो जाने के कारण, भय और निराशा की आशंका में, वीरधवल से मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। उनके नाम हैं सोमसिंह, उदयसिंह और धारावर्ष। इसी प्रकार सौराष्ट्र रूपी नायिका के बिखरे बालों में रत्नरूप (सौराष्ट्र का प्रान्त स्त्रीरूप में वर्णित किया गया) भीमसिंह भी, मदनदेवी के पुत्र वीरधवल के प्रेम के वृक्ष के 'पाके' फलों को एकत्रित करने के लिये (मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने के लिये) शीघ्रता करता है। तब लावण्यसिंह, वस्तुपाल के उपायों की प्रत्याशित सफलताओं की शुभ कामना चाहता है। जब यदु राजा ने वीरधवल पर आक्रमण कर दिया था तो महीतट और लाटदेश के राजा क्रमशः विक्रमादित्य और सहजपाल ने सम्मिलन कर एकता कर ली थी। परन्तु अब उनमें फूट हो गई है और दोनों ही एक दूसरे से इर्ष्यापूर्ण प्रतिस्पर्द्धा कर रहे हैं कि उन्हें वीरधवल का सौहार्द प्राप्त हो। और जब महा नदियां (राजा लोग) वीरधवल के सेना रूपी समुद्र से मिल रही हैं तो छोटी नदियां भी (छोटे राजा भी) वैसा ही कर रही हैं।

लावण्यसिंह इस बात पर आश्चर्य प्रगट करता है कि दक्षिण और मालवा के राजा लोगों के किये गये आक्रमणों की कूच को रोकने के लिये उसने जो दो गुप्तचर भेजे थे वे अभी तक क्यों नहीं लौटे। [यहां पर एक संपूर्ण पत्र के अक्षर अस्पष्ट हो गये हैं] पन्ना उलटने पर, हम लावण्यसिंह को विस्तार से सारे समाचार बताते हुए निपुणक को देखते हैं; कि कैसे वह और सुवेग, जो दूसरा 'दूत' है, सिंहण के 'विश्वास भाजन' बन गये। निपुणक ने सिंहण को यह समझाया, कि गुर्जर प्रदेश का सीमा प्रदेश, हम्मीर की सेना से नष्ट भ्रष्ट किया जा रहा है और वीरधवल हठात् उसके विरुद्ध कूच कर चुका है। सिंहण ने यह अवसर गुजरात पर आक्रमणार्थ उपयुक्त समझा। निपुणक कहता है कि उसने सिंहण को, प्राप्तकाल में आक्रमण न करने के उपयुक्त अवसर के लिये मनाया, और जब हम्मीर से लड़ते लड़ते उसकी (वीरधवल की) शक्ति क्षीण होने लगे तब, तुरन्त वह, युद्ध क्षेत्र में कूद जाय; और अभी तो वह गुजरात और मालवा देशों की ओर जानेवाली सड़कों पर ही अपनी फौज के साथ डटा रहे। वह कहता है कि सिंहण तदनुसार ही तापी (तपनतनया) नदी के किनारे आनन्द से दिन काटने लगा। दूसरा आवेदन वह यह करता है कि किस

प्रकार सुवेग और उसने सिंहण और संग्रामसिंह के बीच भेद उत्पन्न कर दिया। उसने पहले ही राजा देवपाल के नामाङ्कित घोड़े को, संग्रामसिंह को भेंट करने के लिये, प्राप्त किया। सुवेग ने अपने आपको, एक पत्र के साथ जो दीखने में खाली था और जिसे सूर्य की धूप में रखने से उसके अक्षर स्पष्ट दीख पड़ते, पकड़ने दिया। यह पत्र, जो देवपाल द्वारा अपने करदाता प्रधान राजा मण्डलेश्वर संग्रामसिंह को भेजा गया था, इस भावार्थ से अङ्कित था, कि वह इस अश्वरूपी रत्न को स्वीकार करे जो भेजा गया है; और उसे यह आज्ञा दी गई कि वह अपने सैन्य शिविर से तब तक आगे न बढ़े जब तक कि एक अप्रत्याशित आक्रमण से वह (देवपाल) इस राजा से युद्ध न ठान ले जो गुर्जर देश की ओर कूच कर रहा था। इस में आदेशरूपेण यह भी परामर्श था, कि अपने पितृवधवैर (पिता के वध से किया गया वैर) के समुद्र के उस पार, अपनी खड्गरूपी नौका से उतर जाय। तब निपुणक को, जो कि सिंहणदेव का उस समय विश्वासपात्र बन रहा था, यह कहा गया कि इस घोड़े के सम्बन्ध में सत्य २ मालूम करे। वह बाहर गया और संग्रामसिंह को सूचना दिलवाई कि सिंहणदेव उसके विरुद्ध उभड़ा पड़ा है। उसने फिर वापिस लौट कर संग्रामसिंह को सूचना दी कि घोड़े पर मालवाधीश का नाम अङ्कित है (देवपाल, इस प्रकार मालवाधीश का नाम दिखाया गया है)। संग्रामसिंह भय से भाग खड़ा होता है; और निपुणक कहता है कि अब सिंहण ने, मालवा के विरुद्ध लड़ने को, कूच कर दी है और देवपाल उसका साथ देने को आगे बढ़ता है। फिर निपुणक और लावण्यसिंह वीरधवल को इस बात की सूचना देने को प्रस्थान करते हैं। साथ ही 'प्रवेशक' समाप्त होता है।

दूसरे अङ्क में वस्तुपाल रंगभूमि पर आता है। वह चन्द्रज्योत्स्नाधवलित रात्रि का विशदरूपेण निरूपण करता है। वह सिंहण और संग्रामसिंह के बीच उत्पन्न हुए द्वैधीभाव को (सुवेग से) जान कर बहुत प्रसन्न होता है और यह सोचता है कि संग्रामसिंह की सहायता के बिना, सिंहण को उस देश के विषय में जानकारी रखनेवाला निर्देशक मिलेगा नहीं। अतः वह ध्वंसकारी आक्रमण करने में अशक्त ही रहेगा। तब वह संग्रामसिंह की खूब प्रशंसा करता है। पहले उसके द्वारा सिंहण की सेना पर की गई विजय का वर्णन करते हुए कहता है, कि जब रेवा के किनारे (नर्मदातट पर), अर्जुन (कार्तवीर्य) द्वारा रावण का अभिमान चूर चूर कर दिया गया, उस समय के उत्पन्न विस्मय रस को भी उसने गौण बना डाला। साथ ही उसने यह भी प्रतिपादन किया, कि नाना भेंटों और चापलूसी के वार्तालाप से, वह उसके साथ मैत्री स्थापित करने की पूर्ण चेष्टा कर रहा है। इसी समय यह सम्वाद भी आता है कि संग्रामसिंह ने शीघ्रता से स्तम्भतीर्थ पर कूच कर दी है। इस दुष्टता से क्रुद्ध होकर वस्तुपाल एक अधिकारी (भुवनक) को बुला भेजता है जो संग्रामसिंह के प्रतिनिधिरूप में वहां है; और शूरपाल के योग्य सेनापतित्व में अपनी फौजों और इधर राजालोगों को उस स्थान के संरक्षणार्थ भेजता है। भुवनक अन्दर आता है और सारी युद्ध की साजसज्जा को देखता है। साथ ही वह वस्तुपाल के मुंह से यह धमकी देते हुए सुनाता है कि मही नदी के रक्त से रंजित जल के द्वारा समुद्र के जल को भी लाल बना डालूंगा। उसे इस बात पर आश्चर्य होता है कि संग्रामसिंह की सेना के आगे बढ़ने का समाचार किस प्रकर सर्वत्र फैल गया; और सारी तैयारी, जो इतनी शीघ्रता से हुई, उन पर आश्चर्य प्रगट करते हुए संग्रामसिंह के सैन्यसञ्चालन के तथ्य को अस्वीकार कर देता है। वह कहता है कि उसका स्वामी तुरुष्क और तुरण लोगों की अस्त्रशस्त्रों की खुजलाहट मेटने

के लिये वीरधवल का साथ देने को, वह यह निश्चय कर के कि अपने स्वामी के लिये यही मार्ग प्रशस्ततर होगा, गुर्जर युद्धक्षेत्र में प्रयाण कर चुका है। तदनुसार वह मन ही मन, कार्य किये जाने के लिये, उसके पास सम्वाद भिजवाने का पक्का निश्चय कर लेता है। वस्तुपाल अपने हृदय में बात को छिपाने की आकृति से कहता है कि चाहे जो भी कुछ हो तुम्हारे लिये यही उचित है कि तुम अति शीघ्र अपने स्वामी के पास चले जाओ। ऐसा कह कर वह उसे अपदस्थ (पदच्युत) कर देता है। तब निपुणक ‡ की ओर देखने पर उसे पता लगता है कि निपुणक ने निश्चयशील संग्रामसिंह को मही नदी को पार करने के लिये छोड़ा था। वस्तुपाल उस समय धवलक की रक्षार्थ स्तम्भतीर्थ की ओर प्रयाण करने का दृढ़ निश्चय कर लेता है।

तृतीय अङ्क में वीरधवल और तेजःपाल रङ्गभूमि में आते हैं। प्रातःकाल का समय है। वीरधवल प्रभातवेला के सुन्दर दृश्य का लम्बा और अत्यन्त आकर्षक वर्णन करता है। वीरधवल यह जिक्र करता है कि सिन्धुराज के पुत्र ने उसके साथ मैत्री स्थापित कर ली है। वीरधवल, मेदपाट पृथ्वी के (मेवाड़ के) शिरोभूषण स्वरूप उस जयतल का सम्वाद पाने की प्रतीक्षा में है, जिसने इसका साथ नहीं दिया और जिसके विरुद्ध हम्मीर ने कूच कर दी है। उसी क्षण अवश्य प्राप्त किये जाने योग्य समाचार मिल जाते हैं। एक गुप्तचर कमलक, हम्मीर के वीरों द्वारा सारे मेवाड़ के जलाये जाने का समाचार लाता है। वह लूटमार के भयङ्कर समाचार विस्तृत रूप से बताता है। अन्त में वह कहता है कि वह (कमलक) तुरुष्क के छद्म वेष में, (उसी वेषभूषा को पहने बता कर) आवाज मारने लगा "भाग जाओ" "वीरधवल आ पहुंचा है।" तब भय के मारे तुरुष्क सभी दिशाओं में भगने लगे और लोग अपने रक्षक (वीरधवल) के दर्शनार्थ आगे बढ़ने लगे। उनके बीच में कमलक ने अपना छद्म वेष उतार दिया और उन्हें यह बताया कि वीरधवल हम्मीर की सेना का पीछा कर रहा है। साथ ही जितनी अधिक उत्सुकता से जनता आगे बढ़ती जाती थी उतनी ही शीघ्रता से शत्रु भागे जाते थे। वीरधवल कहता है कि म्लेच्छों को छोड़कर उसके सभी शत्रु अपने सचिव के बुद्धि-चातुर्य से, पददलित एवं विजित कर लिये गये। तब तेजःपाल ने उत्तर दिया कि वस्तुपाल द्वारा हम्मीर पर विजय प्राप्त्यर्थ कार्यरूप में प्रयोग करने के लिये ऐसे ही उपाय सोचे गये हैं।

इसके बाद फिर प्रवेशक आता है जिसमें तुरुष्क वेष में दो गुप्तचर उपस्थित होते हैं, अर्थात् एक कुवलयक और दूसरा शीघ्रक, जो दोनों सगे भाई हैं। शीघ्रक कहता है कि तेजःपाल की आज्ञानुसार वह बगदाद के अधिपति और इतर म्लेच्छप्रान्तीय देशों के स्वामी के पास, स्वयं को खप्परखान का दूत बताता हुआ उपस्थित हुआ। उसने खलीप को कहा कि मीलच्छीकार अपनी दुराग्रहपूर्ण धृष्टता से खलीप की आज्ञाओं का भली प्रकार पालन नहीं करता। खलीप ने उसके हाथों एक आदेश भिजवाया जिसमें खप्परखान को यह कहा गया कि वह मीलच्छीकार को हथकड़ी और बेड़ियों से जकड़ कर खलीप के पास भिजवा दे। वह (शीघ्रक) यह आदेश खप्परखान के पास ले गया। वह मीलच्छीकार के विरुद्ध हो गया। इसी समय शीघ्रक ने गुप्तरूप से मीलच्छीकार के पुत्र को, अपने पिता के विरुद्ध उठाये जाने वाले इस

‡ या सुवेग। इस स्थान पर सिवाय 'निपुणकं प्रति' शब्द के कोई रङ्ग निर्देशक शब्द नहीं जिससे यह मालम हो कि दोनों ही रङ्ग भूमि पर हैं।

कदम की सूचना दी और उस पुत्र ने अपने पिता के पास, इस सम्वाद को सूचित करने के लिये शीघ्रक को भिजवा दिया। फलतः शीघ्रक का तत्कालीन प्रस्थान मीलच्छीकार को सूचित कर दुःखी बनाने के लिये था।

चतुर्थ अङ्क में मीलच्छीकार चिन्ता, क्रोध, निराशा और लज्जा के भावावेश की स्थिति में, अपने अमात्य ईसप के साथ बताया गया है। वह खप्परखान सम्बन्धित सम्वाद के विषय में अपने अमात्य से परामर्श ले रहा है। एकाएक ही उस स्थान पर आवाजें और शोरगुल होता है और कुछ सिपाही, आसपास मारकाट मचाते हुए, बड़ी तेजी से उधर बढ़ रहे हैं। मीलच्छीकार के विषय में बड़ी सरगर्मी से पूछताछ हो रही है। उसकी आवाज और उसके प्रति वीरधवल की ललकार सुनाई पड़ती है। मीलच्छीकार और उसका मंत्री वहां से भाग निकलते हैं। वीरधवल प्रवेश करता है। उसे अपने शत्रु का, अपने हाथों से बिना वध किये, भाग निकलने पर निराशा होती है। इसी समय, द्वारभट्ट द्वारा वीरधवल का यशोगान किया जाता है (एक भाट सैनिक वर्दी में उसके साथ आता है)। वह तेजःपाल को बुला भेजता है। दोनों के बीच कुछ वार्तालाप होता है जिसमें वीरधवल कहता है, कि हम्मीर जैसे कापुरुष (कायर आदमी) का, जो उसके नाम से ही थर्रा उठता है, वह पीछा नहीं करना चाहता और फिर वह तो वस्तुपाल के द्वारा रचे गये उपायों से ही हतोत्साह हो गया है। अङ्कसमाप्ति के समय मध्याह्न काल है।

पञ्चम अङ्क में कञ्चुकी (अन्तःपुर का प्रतिवेशी) आता है। वह धवलक में ऐसे समाचार की प्रतीक्षा कर रहा है कि जिससे वह वीरधवल की रानी जयतल्लदेवी को सान्त्वना दे सके। उसे यह समाचार मिलता है कि युद्धक्षेत्र में हम्मीर के पैर छूट गये हैं और वीरधवल धवलक लौटने को प्रस्थान कर चुका है। फिर वीरधवल और तेजःपाल एक नरविमान पर आरूढ हो कर प्रवेश करते हैं। मार्ग में सुन्दर दृश्यों का दर्शन, वर्णन और प्रशंसन करते हैं; वह अर्बुदाचल, जिसके निकट वशिष्ठ ऋषि की पर्णकुटी है; परमार वंश की वह राजधानी चन्द्रावती जिसे ऋषि वशिष्ठ ने बसाया; सरस्वती नदी जो मानो अपने, पवित्र करने वाली उपस्थिति के रहते भी पापों को नष्ट करने के लिये, अन्तःसलिला होकर पृथ्वी में समा गई है; वह स्थान सिद्धपुर जहां इस नदी से, पूर्व दिशा में, पार्श्वस्थित रुद्रमहाकाल के दर्शन होते हैं; गुर्जर राजाओं की वह राजधानी (अन्हिल पट्टन) जिसके पास ही एक बड़ी झील सिद्रसागर है (जो सहस्रलिंग कहलाती है); और वह साभ्रमती जिस के तट पर कर्णावती पुरी है, और जिसकी लहरों की आवाज से उत्पन्न मृदङ्ग ध्वनि पर लवणप्रसाद के हाथ में के खिले हुए कमलपुष्पों पर लक्ष्मी नृत्य करती सी मालूम देती है। अन्त में वे धवलक पहुंच जाते हैं। वीरधवल शहर के बाहर एक उद्यान में अपने विजय प्रवेश की प्रतीक्षा में ठहरता है। वहां उसका अपनी रानी और विदूषक से मिलाप होता है (यहां पर रानी का नाम जैत्रदेवी दिया गया है)। जब विजयप्रवेश का समय होता है तो वस्तुपाल और तेजःपाल अपने घोड़ों पर सवार हो कर आते हैं। तेजःपाल कहता है कि वस्तुपाल ने अपने बुद्धिबल से हम्मीर मीलच्छीकार को शान्तिसन्धि के लिये हाथ बढ़ाने को बाध्य किया है। मीलच्छीकार के दो गुरु रदी और कदी, खलीप से उसके लिये सिंहासन पर बैठे रहने देने के पक्ष में आदेश लाते हुए, खलीप के मंत्री वअदीन के साथ, समुद्र मार्ग से यात्रा करते हैं। उन्हें पकड़ कर स्तम्भतीर्थ में कैद कर लिया जाता है। इन लोगों के लिये क्षतिपूर्ति देने के

निमित्त मीलच्छीकार जीवनपर्यन्त उसके (वीरधवल के) आधिपत्य को मानने के लिये विवश हो जाता है। अब वे नगर में प्रवेश करते हैं। प्रवेश करते ही वीरधवल शिव के मन्दिर में जा कर भूतभावन भूतनाथ की प्रार्थना करता है। भगवान् शङ्कर साक्षात् प्रत्यक्ष हो कर उसे वरदान मांगने को कहते हैं, और मांगे हुए वरदान के दिये जाने पर, रूपक समाप्त होता है। इसके बाद दो पद्य और दिये हुए हैं जिनका कुछ भाग विकृत हो चुका है। उनमें नाटकीय समर्पण वस्तुपाल को किया गया है।

इस प्रकार हम्मीर पर का यह विजय एक सुचारित नीतिरीति के विजय के रूप में- प्रतिपादित किया गया है।

२६ – निम्नलिखित ऐतिहासिक व्यक्ति (वीरधवल, वस्तुपाल, तेजःपाल और ग्रन्थलेखक जयसिंह के अतिरिक्त) पात्र के रूप में या केवल उल्लेख कर नाटक में बताये गये हैं:- मदनदेवी (वीरधवल की माता); जयतलदेवी या जैत्रदेवी (वीरधवल की पत्नी); जयन्तसिंह (वस्तुपाल का पुत्र); लावण्यसिंह (तेजःपाल का पुत्र); बगदाद का खलीप; हम्मीर मीलच्छीकार; सिंह, लाटदेश का राजा; शंख या संग्राम सिंह, * सिन्धुराज का पुत्र और उल्लिखित सिंह का भतीजा; और मालवा के देवपाल का मण्डलेश्वर † सिंहण; देवपाल देव, मालवानरेश; सोमसिंह, उदयसिंह और धारावर्ष मरुदेश के राजा लोग; सुराष्ट्र का भीमसिंह; महीतट का विक्रमादित्य; लाटदेश का अधिपति सहजपाल और मेवाड़ का जयतल।

२७ – इनमें के सभी नाम कीर्तिकौमुदी तथा अन्य प्रकीर्ण ग्रन्थों में उपलब्ध होने से गुजरात के इतिहास में प्रसिद्ध हैं। लाटदेश के सिंह और सहजपाल के नाम अवश्य नूतन हैं। सहजपाल के लिये लावण्यसिंह ने गत घटनाओं और नाटक में वर्णित घटनाक्रम के सम्बन्ध में उल्लेख किया है। सिंह का नाम वीरधवल ने गत घटना के सम्बन्ध में लिया है। सम्भवतः ये दोनों नाम एक ही व्यक्ति के हों। कीर्तिकौमुदी के ४ र्थ सर्ग के ५७ वें पद्य में लाटदेश के राजा का उल्लेख किया गया है; यद्यपि वहां कोई विशिष्ट नाम निर्देश नहीं हुआ है। संग्रामसिंह का इस सिंह के साथ वंश का सम्बन्ध और मालवा के देवपाल के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध, सम्भवतः हमें इसी रूपक से ज्ञात होते हैं। उसे वीरधवल के प्रति पितृवैर रखने वाला और सिंहण के प्रति निजपितृवधवैर रखने वाला बताया गया है। कीर्तिकौमुदी (सर्ग, ४ पद्य ६८) में उसी का दूत स्वयं उसकी प्रशंसा करता हुआ बताया गया है और यहां उसकी वस्तुपाल द्वारा अत्यधिक रूप में प्रशंसा करवाई गई है। देवपाल का नाम दो शिलालेखों में उपलब्ध होता है। एक उदयपुर वाले और दूसरे हरसौदा वाले शिलालेख में (इण्डि० एण्टी० भाग १६, पृ० २४ और भाग २०, पृ० ८३, ३१०)। यह जैतुगी का पिता ही है जिसके राज्य काल में आशाधर ने अपने धर्मामृत पर, सम्वत् १३०० विक्रमाब्द में, अपनी टीका बनाई (डा० भण्डारकर की रिपोर्ट, सन् १८८३-८४ पृष्ठ १०५)। उदयपुर के शिलालेखों में से एक पर उसका समय सम्वत् १२८६ लिखा गया है

* ये दोनों नाम एक ही राजा के हैं, यह बात कीर्तिकौमुदी सर्ग ४ पद्य ६६, ७२ और सर्ग ५ के पद्य ४१ से स्पष्ट है। इस के विरुद्ध सुकृतसंकीर्त्तन में कुछ भी नहीं मिलता। डा० बूहलर कदाचित् शंख को संग्रामसिंह का सहायक राजा मानते हैं (पृ० ३६)

† कम से कम उस बनावटी पत्र में ऐसा बताया गया है।

और वह प्रस्तुत नाटक के समय से मिलता है। मारवाड़ के राजाओं का कीर्तिकौमुदी में वर्णन है परन्तु उनका नाम निर्देश नहीं दिया गया। हमें उनमें से तीन के नाम यहां मिलते हैं। इनमें से धारावर्ष का नाम चतुर्विंशतिप्रबन्ध में आया है और उदयसिंह † को, चाहमानवंश के अश्वराज शाखा के जाबालिपुर के राजा के रूप में, केतु के पौत्र और समरसिंह के पुत्र के रूप में, बताया है। इसी प्रकार उसमें सुराष्ट्र के भीमसिंह को भद्रेश्वर का भीमसिंह बताया गया है। महीतट का विक्रमादित्य एक नया नाम है। कीर्तिकौमुदी में (सर्ग ४, श्लोक ५७) गोद्रहनाथ (गोद्रह के अधिपति) का वर्णन किया गया है; और चतुर्विंशतिप्रबन्ध में घुघुलु का महीतट के गोद्रहर (गोधरा) में शासन करना बताया गया है। (कीर्तिकौमुदी पृ० २३-२४)। मेवाड़ का जयतल, जैत्रसिंह मालूम होता है। वीरधवल की रानी जैतलदेवी और जैत्रदेवी के नाम यह बताते हैं कि जैत्र और जैतल एक दूसरे रूपमें बदले जा सकते हैं। मेवाड़ में एकलिंग जी के मन्दिर के स्तम्भ पर जैत्रसिंह का समय विक्रम सम्वत् १२७० अङ्कितहै (भावनगर इन्स्क्रिप्सन्स्, पृष्ठ ६३)।

२८ – चतुर्थ सर्ग में (कीर्तिकौमुदी) लवणप्रसाद और वीरधवल की दक्षिण के राजा सिंहण से की गई लड़ाई का वर्णन आता है, जिसमें यह क्रम पक्ष विपक्ष के वीरों के घमासान-युद्ध के रूप में वर्णित है। सोमेश्वर के द्वारा दिये गये विवरण और प्रस्तुत नाटक के प्रथम अङ्क में वीरधवल द्वारा वर्णित भूतकाल के घटनाक्रम की संगति बराबर बैठती है और इस हस्तलिखित पुस्तक का लेखनकाल विक्रम सम्वत् १२८६ (या १२३० ईसवीय वत्सर) है।

२९ – अब प्रश्न यह उठता है कि यह हम्मीर कौन है ? सभी उपरोक्त दिये गये वर्णनों से यही मालूम होता है कि वह एक तुर्क है और हम्मीर, अमीर का परिवर्त्तित रूप है। इसक, उदाहरण स्वरूपमें, जो महोबा के शिलालेख में या तो सुबुक्तदीन के या गजनी के महमूद के नाम के लिये हम्मीर या हम्वीर दिया गया है, उसे ले सकते हैं। जिस रूप में हम्मीर को शान्ति सन्धि की वार्ता करनी पड़ी, जो इस नाटक में वर्णित है, उस कथानक का आधार दो भिन्न २ स्थलों पर, चतुर्विंशतिप्रबन्ध और मेरुतुङ्ग कृत प्रबन्धचिन्तामणि ग्रन्थ में उपलब्ध होता है (कीर्तिकौमुदी पृ २४-२५) प्रबन्धचिन्तामणि में उन पुरुषों के लिये विशेष नाम का निर्देश नहीं किया गया है जिनके साथ यह चालाकी खेली गई; परन्तु उसे केवल म्लेच्छपति सुरत्राण (म्लेच्छों का राजा सुलतान) नाम से बताया गया है। दूसरे में सुरत्राण मोजदीन नाम विशेष रूप से निर्दिष्ट किया गया है। परन्तु इस नाम की, नाटक में उद्धृत मीलच्छीकार से कभी भी सङ्गति नहीं बैठ सकती। दिल्ली का शाहंशाह, जिसका नाम नाटक में अभिप्रेत है, मैं सोचता हूँ कि सुलतान शमसुद्दुन्या वाउद्दीन अबुल मुजफ्फर अल्तमस या संक्षेप में सुलतान शमसुद्दीन है। वह दिल्ली के सिंहासन पर १२१० ईस्वी सन् में बैठा और १२३५ ईस्वी सन् में मर गया। स्वयं की बुद्धिमत्ता के लक्षणों से, जो उसके प्रत्येक कार्य से व्यक्त होते हैं, उसे अमीर शिकार (शिकार खाने का प्रधान) का उच्च पद कुतुबुद्दीन द्वारा दिया गया। मैं सोचता हूँ कि अमीरशिकार का ही परिवर्त्तित नाम मीलच्छीकार है (इलियट और डाउसन का भारतवर्ष, ग्रन्थ संख्या २, पृष्ठ ३२०-८)। १२०६ और १२४० ईस्वी सन् के बीच में कोई भी मुईनुदीन नाम वाला पुरुष राज्य करता हुआ नहीं मालुम

† वीरधवल के पुत्र वीरम का श्वसुर – देखिये पूरक नोट्स।

होता और वीरधवल का राज्य काल १२३३ ईस्वी से १२३८ ईस्वी तक है। राजशेखर के चतुर्विंशतिप्रबन्ध का निर्माण काल १४०५ सम्वत्, और मेरुतुङ्ग के ग्रन्थ का १३६१ विक्रम सम्वत् है। जयसिंह का ग्रन्थ समकालीन रचना है और वह इस विषय में यदि किसी मनुष्य के साथ, किसी प्रकार की चालाकी खेली गई हो, जिसका विवरण ऊपर दिया हुआ है, अधिक ठीक और उपयुक्त उतर सकता है।

३०– तेजःपाल के पुत्र के रूप में लावण्यसिंह का नाम एक कल्पना का परामर्श करता है। यह नाम कीर्तिकौमुदी और अन्य स्थलों पर आता है। सुकृत संकीर्तन ऐतिहासिक काव्य के रचनाकार अरिसिंह के विषय में, राजशेखर कृत प्रबन्धकोष में ऐसा कहा गया है कि उसके शिष्य अमरचन्द्र ने, जिसको उसने कविता रचने की शिक्षा दी थी, सर्व प्रथम विशलदेव के साथ उसका परिचय करवाया। परन्तु डा० बूहलर, इस काव्य के सम्बन्ध में लिखे गये अपने निबन्ध में बताते हैं, कि जब कभी एक भारतीय कवि अपने चरितनायक की उदारता की प्रशंसा करता है, तब या तो उसके (कवि के) सम्मानप्राप्ति के उपलक्ष्य में या सम्मान प्राप्ति की आशा में, कवि द्वारा उस आश्रय दाता का प्रशस्तिगान किया जाता है। यह बात एक निम्नोक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि वस्तुपाल द्वारा वह उदारतापूर्वक पुरस्कृत कर दिया गया है ‡। इसलिये अरिसिंह को, जब कि वस्तुपाल के हाथ में सत्ता थी, उस के समक्ष राज दरबार में अवश्य उपस्थित होना चाहिए। विशलदेव के राज्यासनारूढ़ होते ही वस्तुपाल की सत्ता छिन गई और १२९८ विक्रम सम्वत् में उसका परलोकवास हो गया। फलतः डा० बूहलर का विचार है कि राजशेखर का कथन निःसन्देह गलत है— अर्थात् अमर पण्डित और उसके द्वारा अरिसिंह सर्व प्रथम विशलदेव के राजत्व काल में (सं० १२९६ – १३१८) धोलका में गये – यह हेतु अधिक सही नहीं मालूम देता और न उपयुक्त आधार पर ही आश्रित है। नैषध महाकाव्य के कर्ता श्रीहर्ष कवि के सम्बन्ध में डा० बूहलर स्वयं कहते हैं, कि राजशेखर को – जिसने १४ वीं शताब्दी के मध्य में रचना की – ऐसे पुरुष के सम्बन्ध में, जो कुमारपाल के समय * (११४३ – ७४ ईस्वी सन्) में जीवित था, इस प्रकार की विश्वस्त सूचना, प्राप्त हो सकने की आशा की जा सकती है। इसलिये एक ऐसे पुरुष के सम्बन्ध की विश्वस्त सूचना, जो बाद में विशल देव(१२३८ - ६१ ई० सन्) के समय में था, अवश्य ही इससे भी अधिक विश्वसनीय कही जा सकती है। दूसरे, वस्तुपाल भले ही अधिकार विहीन होगया हो, फिर भी, समृद्ध तो बहुत रहा होगा ही और उसकी स्थिति कवियों को पुरस्कृत करने की रही होगी। मेरुतुङ्ग ने अपनी प्रबन्धचिन्तामणि में, उसके द्वारा सोमेश्वर को पुरस्कृत किया जाना बतलाया है (पृष्ठ २८८, श्री रामचन्द्र शास्त्रिकृत संस्करण)। भले ही अरिसिंह का पिता लावण्यसिंह तेजःपाल के पुत्र के रूप में न हो, अतः अरिसिंह तेजःपाल का पौत्र न हो। जब वस्तुपाल अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा में था और शत्रुञ्जय के पास जाने को तैयार था, उस समय उसने अपने

‡ प्रकरणगत श्लोक जो उनके विचार से सर्वथा विश्सनीय है द्वितीय सर्ग का ५३ वां श्लोक है (५४, भूल से छपा है)

श्रीवस्तुपालसचिवस्तुतिनित्यरक्तान् पुंसस्तथात्यजदकिंचनता विरक्ता।
मन्देव देववचसापि तथा प्राय(प्र) याति न प्रातिवेश्मिकनिकेतमुखेऽपि तेषाम्॥

* जर्नल, बॉम्बे ब्राञ्च रॉयल एशियाटिक सोसाइटी भाग १० पृष्ठ ३५।

पास अपने पुत्र जयन्तसिंह और भ्राता तेजःपाल को बुला भेजा; साथ ही अपने पुत्र वा पुत्रों और पौत्र वा पौत्रों को भी (बूहलर कृत सुकृतसंकीर्तन, पृष्ठ ६ नोट २)। अतः तेजःपाल के एक पौत्र था। अब यदि अरिसिंह ही एक ऐसा पौत्र हो तो डॉ० बूहलर के सन्देहों के लिये कोई स्थान नहीं रह जाता। चाहे वस्तुपाल के हाथ से अधिकार चले जाने के बाद, वह कवियों को पुरस्कृत न कर सका हो। साथ ही इस बात से यह और भी स्पष्ट हो जाता है, कि क्यों अमरचन्द्र ने सुकृतसंकीर्तन के प्रत्येक सर्ग के अन्त में, ४ पद्यों में से ३ में, वस्तुपाल के गुणों की प्रशंसा करते हुए उसे आशीर्वाद दिया और चतुर्थ में जिसका कि पूर्व प्रतिपादित घटनाक्रम से विशेष सम्बन्ध नहीं है, अरिसिंह के प्रगल्भ कवित्व निर्माणशक्ति की प्रशंसा की ? जो उद्धरण पूर्व पृष्ठ की पादटिप्पणी में दिया गया है वह अमरचन्द्र की कृति का भाग है। अरिसिंह ने वस्तुपाल की मृत्यु होने पर या उसके सत्ताधिकार छिन जाने पर, विशलदेव का संरक्षणाश्रय प्राप्त कर लिया हो (एक स्थायी नियुक्ति और उच्च वेतन जो बाद में दुगुनी करदी गई) अथवा उसका वस्तुपाल से अत्यधिक निकट सम्पर्क होने से , उसने ऐसा न किया हो, और इसलिये कदाचित् उसके शिष्य अमरचन्द्र के द्वारा प्रथम परिचय करवा दिया गया हो।

३१ – अन्य प्रमुख हस्तलिखित पुस्तकों में से, जो भण्डार में हैं, निम्नलिखित उद्धृत की जाती हैं—

भट्टि काव्य की एक प्रति जिसके अन्त में पुष्पिका में इस प्रकार लिखा है "इति वलभी-वास्तव्य श्रीस्वामीसूनोर्भट्टिब्राह्मणस्य कृतौ रामकाव्यं समाप्तम।" (देखिए त्रिवेदी का संस्करण-प्रस्तावना पृष्ठ १७) चक्रपाणिविजयकाव्य – लक्ष्मीधर कृत। दक्षिण कालेज संग्रहालय की प्रति सं० २८, सन् ७३ – ७४, इस पोथीकी प्रतिलिपि होनी चाहिए। प्रस्तावना में लेखक लिखता है कि गौड में शांडिल्य कुल के वंश वालों का एक भट्टकोशल नामक ग्राम है जिसके अधिवासी केशव के सेवा-परायण भक्त हैं। उसी वंश में नरवाहन भट्ट, अजीत, वैकुण्ठ, श्रीस्तम्भ और लक्ष्मीधर ने जन्म लिया। इनमें से प्रत्येक उत्तरोत्तर पुत्रत्व का अधिकारी बना। ग्रन्थकार किसी एक भोजदेव के राजदरबार में रहा करता था। सर्गों के विषय निम्नाङ्कित हैं– बलिवर्णन, हर-प्रसादन, उषावर्णन, कार्तिकेय युद्ध आदि।

कर्पूरमञ्जरी पर टीका – कर्पूरकुसुमनाम्नी श्रीप्रेमराज कृत – जो कि सूर्यकुल के सहिगल परिवार के आभूषण प्रयागदास का पुत्र था। हस्तलिखित प्रति का निर्माण काल सं० १५३८ है।

दमयन्ती-चम्पू पर चण्डपाल की टीका की प्रति सं० १४८४ की।

रघुवंश पर धर्ममेरु कृत टीका।

रघुवंश टीका रत्नगणि कृत संवत् ११(?)६४ में रचित।

हलायुध के कविरहस्य की प्रति, रविधर्म की टीका युक्त, सम्वत् १२१६ की।

कर्पूरप्रकरण की एक प्रति जिसमें रचनाकार ने स्वयं को वज्रशेखर सूरि का शिष्य कहा है।

चन्द्रदूत काव्य – जम्बुनाग कविकृत – हस्तलिखित पुस्तक का सम्वत् १३४२ है।

गीतगोविन्द पर टीका – सारदीपिका।

एक विरहिणी प्रलापकेलि – जगद्धर रचित, केवल ५ पद्य का।

विजयप्रशस्ति काव्य – मैंने यह नाम जैन कान्फरेन्स के लिये तैयार की गई सूचि में देखा, परन्तु जब मैंने इसे देखना चाहा तो दुर्भाग्य से यह नहीं मिला।

इस नाम का श्रीहर्ष, जो नैषधकार प्रसिद्ध कवि है, रचित एक महाकाव्य है परन्तु वह प्राप्त नहीं हुआ।

इसी प्रकार भर्तृहरि चरित नामक ग्रन्थ, सूचि में उल्लिखित है परन्तु उसका भी पता नहीं लग पाया।

व्याकरण – जावालिपुर में सं० १०८० में वर्धमान और जिनेश्वर के परमप्रिय बुद्धि-सागर रचित। संसार के हितार्थ उसने पञ्चग्रन्थी (इस नाम का ग्रन्थ या पांच ग्रन्थ) लिखी। आरम्भ के शब्दों से ग्रन्थ का नाम शब्द - लक्ष्म - लक्षण मालूम पड़ता है। इसी ग्रन्थकार का एक दूसरा ग्रन्थ भी भण्डार में है जिसका नाम प्रमाण - लक्ष्म - लक्षण है। हरिभद्रकृत पञ्चाश-काख्य प्रकरण पर अभयदेव की टीका में बुद्धिसागर को "शब्दादिलक्ष्मप्रतिपादक" कहा है (इण्डियन एण्टीक्वेरी ११, २४८ ए।

सम्बन्धोद्योत – रभसनन्दी कृत। इस ग्रन्थ में कारक सम्बन्ध का प्रतिपादन किया गया है। इसलिये इसका प्रतिपाद्य विषय व्याकरण है, न कि वेदान्त, जैसा कि विश्वास किया जाता है।

उद्भटालङ्कार पर टीका – उद्भटालङ्कार सार संग्रह, कौंकण प्रतिहारेन्दुराजकृत (बूहलर की काश्मीर रिपोर्ट, पृष्ठ ६४) दक्षिण कालेज संग्रह में सं० ६४, सन् ७३ – ७४ की प्रति, इसी हस्त-लिखित पुस्तक की प्रतिलिपि होनी चाहिए। ग्रन्थकार मुकुल ब्राह्मण का शिष्य था जिसके लिये उसने ग्रन्थारम्भ में और अन्त में सुन्दर प्रशस्ति लिखी है।

कल्पलताविवेक, कल्पपल्लव का परिशिष्ट; काव्यकल्पलता पर टीका। विवेक के साथ टीका भी है। एक हस्तलिखित पुस्तक का सम्वत् १२०५ या ११४६ ईस्वी सन् है। परन्तु यह अशुद्ध मालूम देता है। क्यों कि काव्यकल्पलताकार "१३ वें शतक के मध्य में अवस्थित थे" (देखिए डाक्टर भाण्डारकर की रिपोर्ट ८३ – ८४, पृष्ठ ६)।

जयदेव का छन्दः शास्त्र। यह सूत्र रूप में है। हस्तलिखित प्रति का समय सम्वत् ११९० या ११३४ ईस्वी सन् है। जयदेव का ग्रन्थ उनमें से एक है जो ११ वीं शताब्दी के अन्त में और १२ वीं शताब्दी के प्रारम्भकाल में होने वाले जिनवल्लभ सूरि द्वारा पढ़े गये थे। (देखो, सुमति गणी के ग्रन्थ में से कुछ जैन युगप्रधानों के जीवन चरित पर दिये गये मेरे उद्धरण भाण्डारकर की रिपोर्ट ८२ - ८३, पृष्ठ ४७ और २२८) इस पर हर्षट की लिखित एक टीका है जो भट्ट मुकुलक का पुत्र था। दक्षिण कालेज की संख्या ७२ की पुस्तक, इसी हस्तलिखित ग्रन्थ की प्रतिलिपि होनी चाहिये, जो कि इस भण्डार में मूल और टीका समेत उपलब्ध है।

छन्दोविचित – श्री विरहाङ्क कृत। यह प्राकृत में है। इस पर चन्द्रपाल के पुत्र गोपाल कृत टीका भी है। अन्त में मूल को 'कह सिद्धच्छन्द' बतलाया है और टीका को कृतसिद्ध विवृति कहा गया है।

एक छन्दोनुशासन जिनेश्वर रचित, श्री मुनिचन्द्र कृत टीका समेत।

दूसरा छन्दोऽनुशासन – जयकीर्त्ति सूरि कृत।

व्यक्तिविवेक जिसे बर्नेल ने तञ्जोर वाले अपने सूचिपत्र में निबद्ध किया है। उसमें प्रथम पङ्क्ति पूर्ण नहीं है। प्रथम शब्द 'अनुमानान्त' के स्थान में 'अनुमानान्तर्भावम्' है

इसलिए ग्रन्थकार का उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि व्यञ्जना अथवा वह वृत्ति, जिससे कोई भाव व्यञ्जित हो या परामृष्ट किया जाय, वह अनुमान के अतिरिक्त और दूसरी वस्तु नहीं है। ग्रन्थकार महाकवि श्यामलाल का शिष्य और श्रीधर का पुत्र था।

राजशेखरकृत काव्यमीमांसा, प्रथमाधिकरण, कविरहस्य। शाकुन्तल के एक टीकाकार द्वारा काव्यमीमांसाकार का उल्लेख किया गया है (आक्सफोर्ड कैटेलॉग १३५ ए) प्रथमाधिकरण का कुछ अंश अन्हिलवाड़ पाटण में प्राप्त हुआ है (पिटरसन की रिपोर्ट, पञ्चम भाग, पृ० १९)। जैसलमेर भण्डार में हस्तलिखित प्रति पूर्ण सुरक्षित रूप में उपलब्ध नहीं हुई। आरम्भ में ग्रन्थकार लिखता है कि "हम काव्य के सम्बन्ध में उस प्रकार विचार करेंगे जैसा स्वयम्भूने श्रीकण्ठ, परमेष्ठी, वैकुण्ठ तथा अन्य ६४ शिष्यों को, जिनका इच्छा-जन्म होता है, पढ़ाया था। उनमें सरस्वती का पुत्र काव्यपुरुष भी था। उसको प्रजापति ने दिव्यचक्षु देकर काव्य विद्या का बोध कराया। उसने १८ अधिकरणों में विस्तृत रूप से इस काव्यज्ञान को देवताओं को सिखाया। इनमें से इन्द्र ने कविरहस्य, सुवर्णनाभ ने रीतिनिर्णय प्रचेताने आनुप्रासिक, यमने यमक, शेष ने शब्दश्लेष, पुलस्त्य ने वास्तव, औपकायन ने औपम्य, पाराशर ने अति य, उतथ्य ने अर्थश्लेष, ...नन्दिकेश्वर ने रसाधिकारिक, विषण ने देवाधिकरण, उपमन्यु ने गुणौपादानिक का अध्ययन किया। इनमें से प्रत्येक ने एक एक प्रकरण को ले कर विस्तारपूर्वक ग्रन्थ निर्माण किया। परन्तु, उनका विस्तार अत्यधिक हो जाने से उस विद्या (विज्ञान) का कुछ अंशों में लोप हो गया। इसलिये सम्पूर्ण को संक्षिप्त कर, १८ अधिकरणों में, निरूपण किया गया है। फिर प्रकरण और अधिकरण गिनाये गये हैं। शास्त्रसंग्रह (प्रथमाध्याय), शास्त्रनिर्देश, काव्यपुरुषोत्पत्ति, पद-वाक्यविवेक, पाठप्रतिष्ठा ....वाक्यविधियाँ, कविविशेष, कविचर्या, राजचर्या, काकु-प्रकाश, शब्दार्थहरणोपायाः. कविसमय, देशकालविभाग, और भुवनकोश, - ये सब प्रथम अधिकरण में हैं। कविरहस्य में ग्रन्थकार यह प्रतिज्ञा करता है कि इसमें सूत्र और भाष्य होगा। कर्ता यायावर कुल का राजशेखर है। उसने मुनिलोगों के विस्तृत मतों को संक्षिप्त करके काव्यमीमांसा ग्रन्थ बनाया है। हस्तलिखित प्रति का समय १२१६ सम्वत् है। समय और इस बात को देखते हुए कि ग्रन्थकार यायावर कुल का था, उसके प्रसिद्ध नाटककार राजशेखर होने की कोई असम्भावना नहीं है। यह ग्रन्थ नाटककार के उन छः प्रबन्धों में से हो सकता है जिनका उल्लेख उसने बाल रामायण के आदि में किया है। परन्तु यह तभी हो सकता है जब कि 'प्रबन्ध' शब्द से उसका आशय केवल नाटक सम्बन्धी एवं काव्य ग्रन्थों ही से न हो।

राजानक मम्मट और अलक रचित काव्य प्रकाश की एक प्रति मिली है जो उमापति-वरप्राप्त महाराजाधिराज परमभट्टारक कुमारपाल के राज्यानुशासन में १२१५सम्वत् में लिखी गई थी। कुमारपाल के लिए एक अतिरिक्त विशेषण यह दिया गया है-'निजभुजविक्रमरणा-ङ्गणविनिर्जित-शाकम्भरीभूपाल' अर्थात् जिसने युद्धक्षेत्र में अपने बाहुबल के पराक्रम से शाकम्भरी (साम्भर) के राजा को जीत लिया। साम्भर का राजा वस्तुतः अर्णोराज है

(देखिये बॉम्बे गेजेटियर ग्रन्थ १, भाग १, पृष्ठ १८४, फुटनोट) और इस प्रकार उस पर सम्वत् १२१५ या ११५६ ईस्वी सन् के पूर्व में की गई विजय से तात्पर्य है।

नन्दिताख्य (ढ्य ?) प्राकृतछन्दोवृत्ति-रत्नचन्द्रकृत, जो माण्डव्यपुरगच्छ के देवाचार्य का शिष्य था (पिटर्सन रिपोर्ट ३, पृष्ठ २२४)

ब्रह्मसिद्धि पर टीका का एक अंश। अन्त में ये शब्द हैं- "तृतीयकाण्डम्। ब्रह्मसिद्धिकारिकाः समाप्ताः।"

तत्त्वप्रबोधसिद्धिसिद्धाञ्जन - भट्ट मोघदेव मिश्र के पुत्र श्रीहरिहरकृत।

सर्वसिद्धान्तप्रवेशक – न्याय, वैशेषिक, जैन, सांख्य, बौद्ध, मीमांसा और लोकायतिक सिद्धान्तों का निरूपण करनेवाला छोटा ग्रन्थ।

धर्मोत्तर-टिप्पण (अर्थात् धर्मोत्तराचार्यकृत न्यायबिन्दु पर टीका) मल्लवाद्याचार्यकृत।

तत्त्वसंग्रहपञ्जिका कमलशीलकृत, ग्रन्थ का विषय न्याय है।

योगसुधानिधि यादवसूरिकृत, ग्रन्थ का विषय ज्योतिष है।

वराहमिहिरकृत लघुजातक पर टीका, मतिसागरोपाध्यायकृत।

संगीतसारसर्वस्व के हस्तलिखित ग्रन्थ का एक पत्र हृदयेशकृत। पत्र में संज्ञा-परिभाषायें निरूपित हैं।

कर्मविपाक गर्गऋषिकृत, एक टीका समेत। यह हस्तलिखित प्रति नलकच्छ में सं. १२६५ में लिखी गई, जब जयतुङ्गिदेव राज्य करता था। इसको लिखनेवाला जिनवल्लभवंशीय जिनेश्वर का भक्त कोई चित्रकूटनिवासी था। यह जयतुङ्गिदेव मालव का राजा होना चाहिए।

अनेकान्तजयपताका पर मुनिचन्द्र सूरि की टीका की एक प्रति जो सम्वत् ११७१ में रची गई थी।

हितोपदेशामृत (मागधी में) सं. १३१० में निर्मित जब विशालदेव राज्य करता था।

विमलसूरिकृत पद्मचरित की एक प्रति जो भृगुकच्छ (भड़ौच) में सं. ११९८ में जयसिंहदेव के राजत्व-काल में बनाई गई। एक श्लोक में, जो अन्त में उद्धृत है महावीर निर्वाण के ५३६ वर्ष बाद इस ग्रन्थ का निर्माण काल बतलाया गया है।

नेमिचन्द्रसूरिकृत पृथ्वीचन्द्रचरित की एक प्रति, सम्वत् १२२५ में लिखित। यह ग्रन्थ सम्वत् ११३१ में रचा गया। ग्रन्थकार वही नेमिचन्द्र मालूम होता है, जो क्लॉट के रिकार्ड्स् की तपागच्छपट्टावली में ३९ वां है।

सार्द्धशतकवृत्ति की हस्तलिखित प्रति, चन्द्रगच्छ के अजितसिंहकृत, निर्माण समय ११७१ सम्वत्। गर्गऋषि के कर्मविपाक पर टीका की प्रतिलिपि सम्वत् १२२७ में की गई।

हरिभद्र के पञ्चसंग्रह, उपदेशपदप्रकरण, लघुक्षेत्रसमास, संग्रहणीसूत्र, जीवाभिगमाध्ययन पर टीकाएं। लघुक्षेत्रसमासवृत्ति के अन्त में एक पद्य में, विक्रम सम्वत् का पञ्चाशीतिकवर्ष ग्रन्थ-निर्माण-काल दिया हुआ है। यहां पञ्चाशीतिक का अभिप्राय ५८० समझना चाहिए।

हरिभद्र का उपदेशपद – वर्धमानसूरिकृत टीका सहित। एक हस्तलिखित पुस्तक पर समय ११६३ और दूसरी पर १२१२ सम्वत् उद्धृत है।

हरिभद्रकृत समरादित्यचरित की प्रतिलिपि, समय १२४० सम्वत्।

ललितविस्तर, हरिभद्रकृत।

हरिभद्र [शिष्य ?] कृत–कुवलयमाला हस्तलिखित प्रति का समय ११३६ सम्वत है।

चन्द्रप्रभचरित सिद्धसूरिकृत, ११३८ सम्वत् में रचित। यह सम्भवतः उन सिद्धसूरि के दादागुरु ही है, जिन्होंने ११६२ सम्वत् में बृहत्क्षेत्रसमासवृत्ति लिखी थी।

हरिभद्रकृत–धर्मबिन्दुप्रकरण पर टीका।

नन्दिटीका–दुर्गपदव्याख्या–धनेश्वरशिष्य चन्द्रसूरिकृत। हस्तलिखित पुस्तक का समय १२२६ सम्वत् है।

सिद्धसेन दिवाकरकृत, सम्मतिसूत्र, अभयदेवसूरि की टीका समेत, जो प्रद्युम्नसूरि का शिष्य था। खण्ड १ और २।

उमास्वातिकृत–प्रशमरति, हरिभद्राचार्यकृत अवचूरिका समेत, हस्तलिखित पुस्तक का समय ११८५ सम्वत् है।

नागरवाचकके भाष्यसहित उमास्वातिकृत तत्त्वार्थ। नागरवाचक स्वयं उमास्वाति का दूसरा नाम है। (पिटरसन ३, परिशिष्ट पृष्ठ ८४ और, २ परिशिष्ट पृष्ठ ७६)।

उपदेशकन्दली–भिल्लमालवंशीय 'कडुयराय' (कटुकराज) पुत्र आसडकृत। (पिटरसन ३, पृ० ३६;४०)

चैत्यवन्दनसूत्र, टीका समेत, टीका सम्वत् ११७४ में यशःप्रभसूरि द्वारा बनाई गई है।

संग्रहणी सटीक। टीका ११३६ सम्वत् में शालिभद्र के द्वारा बनाई गई। यह वही शालिभद्र है जिसका उल्लेख पिटरसन ने अपनी रिपोर्ट ४, परिशिष्ट पृ० ५८ में नीचे की ओर से तीसरी पंक्ति में किया है, हस्तलिखित ग्रन्थका, लेखनकाल १२०१ सम्वत् है।

जिनदत्तसूरिकृत, प्राकृतपट्टावली की नकल। यह सम्वत् ११७१ में प्रसिद्ध नगर पट्टन में जयसिंहदेव के राज्य में बनाई गई।

धर्मविधिप्रकरण नन्नसूरिकृत। हस्त० प्रति० सम्वत् ११६० है।

अभयदेव की विपाकसूत्रवृत्ति की प्रतिलिपि सं० ११६५।

सम्वेगरंगशाला श्रीबुद्धिसागरसूरि के शिष्य जिनचन्द्रसूरिकृत। समय १२०३ सं०

अङ्गविद्या।

महापुरुषचरित्र मानदेवसूरि के शिष्य शीलाचार्यकृत। हस्तलिखित प्रति का समय १२०३ सम्वत् है।

३२—इस बड़े भण्डार को देखते हुए अन्य संग्रहों में प्राप्त पुस्तकें अधिक महत्वपूर्ण नहीं थी उनमें से दो में कुछ ताड़पत्रीय हस्तलिखित पुस्तकों के साथ कागज पर लिखित प्रतियां थीं, और अन्य दो में क्रम बिलकुल अस्तव्यस्त था। निम्नलिखित विवरण कुछ उन महत्वपूर्ण पुस्तकों का है जिन्हें मैं देख पाया—

लघु-भागवत गोस्वामीकृत

बृहद् वामनपुराण

जगतसिंहयशोमहाकाव्य के तीन सर्ग जो मेवाड़ के राजा कर्ण के पुत्र जगतसिंह के सम्मान में श्री हर्ष के नैषधीय-काव्य की प्रतिस्पर्धा-स्वरूप, श्रीकृष्ण के पुत्र भट्टमण्डन द्वारा रचा गया।

हरविजय की ताड़पत्रीय प्रतिलिपि सं. १२२८।

दुर्वाससः पराजय — काशीनाथकविकृत। विष्णु-भक्ति-विषयक एक नाटक; इसके लिये ऐसा बताया गया है कि सूत्रधार ने इसे मथुरा में रङ्गमञ्च पर प्रस्तुत किया था।

लटकमेलक प्रहसन की एक हस्त लिखित प्रति सं. १६०२ की।

कुमारसम्भव टीका लक्ष्मीवल्लभकृत।

सुभाषितों के संग्रह की आधुनिक समय की एक प्रति। इसमें न तो संग्रहकर्ता का और न उद्धृत श्लोकों के रचयिता महानुभावों के नाम लिखे गये हैं। परन्तु, विक्रमादित्य की राज-सभा के मानेजानेवाले नवरत्न कवियों का परिगणन किया गया है, साथ ही प्रत्येक का बनाया हुआ एक एक श्लोक भी दिया गया है। ६ पद्य निम्नलिखित हैं :—

१. धन्वन्तरि—'मित्रं स्वच्छतया' आदि, यह पद्य सुभाषितशार्ङ्गधर आदि में आता है, परन्तु वहां इसके निर्माता का नाम नहीं दिया है।

२ क्षपणक—'अर्थी लाघवमुत्थितो निपतनं कामातुरो लाञ्छनम्' आदि।

३. अमर—'नीतिर्भूमिभुजां नतिर्गुणवतां ह्रीरङ्गनानां धृतिः' आदि।

४. शङ्कु—'धर्मः प्रागेव चिन्त्यः' आदि। यह पद्य राजनीति ग्रन्थ,स्मृतियां, भारत, तथा रामायण से उद्धृत श्लोकों में शार्ङ्गधर पद्धति में लिखा हुआ है।

५. वेतालभट्ट—'कार्पण्येन यशः क्रुधा गुणचयो दम्भेन सत्यं क्षुधा' आदि।

६. घटकर्पर—'मूर्खः शान्तस्तपस्वी क्षितिपतिरलसो मत्सरो धर्मशीलो' आदि; यह पद्य घटकर्पर काव्य में नहीं मिलता।

७. कालिदास—'स्त्रीणां यौवनमर्थिनामनुगमो राज्ञः प्रतापः सतां' आदि।

८. वराहमिहिर—'विद्वन् सत्पदि (संसदि ?) पाक्षिकः परिणतो मानी दरिद्रा गृही' आदि।

९. वररुचि—'उत्खातान् प्रतिरोपयन्' आदि; यह वल्लभदेव द्वारा बिना कर्तृ नाम के और शारङ्गधरपद्धति में राजनीति आदि में से उद्धृत श्लोकों में आता है।

रघुटीका – धर्ममेरुकृत।

कातन्त्रविस्तार – करणदेवोपाध्याय श्रीवर्धमानकृत।

एक प्रति लिङ्गानुशासन – दुर्गोत्तमकृत सटीक।

काव्यप्रकाशटीका – भवदेवमिश्रकृत। यह शक सं० १६६३, लक्ष्मण सम्वत् ५२४ में गङ्गातट पर पट्टन में बनाई गई, जब कि शाहजहां पृथ्वी का शासन करता था। रचियिता मिश्र श्रीकृष्णदेव का पुत्र और भवदेव ठक्कर का शिष्य था।

भगवद्गीतामृततरङ्गिणी (पुष्टिमार्गीय) ।

तार्किकचूडामणिकृत प्रमाणमंजरी की एक प्रति, लेखन समय सं० १४७० विक्रमाब्द और शक संवत् १३३५ ।

एक जातक – परमहंस परिव्राजकाचार्य वामनकृत ।

पराशरतुल्य – गङ्गाधररचित ।

फलकल्पलता – एक वार्षिक फल ग्रन्थ, गुर्ज्जरमण्डल के नृसिंह कवि रचित ।

ज्योतिषमणिमाला की एक प्रति । अन्त में पुष्पिका के पूर्व निम्नलिखित श्लोक है

"सम्वच्छाभ्रयुगद्विचन्द्र १२४० समये चाषाढ़मासे सिते ।"
पक्षे पञ्चमी शुक्रवारकरभे सौभाग्ययोगान्विते ।
ऊदीज्यो (औदीच्यो ?) हरनाथवंशतिलकस्तस्यात्मज [:] केशवः
तस्य स्वात्मजत्रीकमस्य पठनात्म (त्मा) र्थे च कृत्वा मुदा ॥

इति श्रीकेशवविरचितायां ज्योतिषमणिमालायां गोरजलग्नाधिकारे अष्टादशम (दश?) स्तवक १८ । इति श्री मणिमालासमाप्त सम्वत् १७५० वर्षे ।"

इस ज्योतिषमणिमाला के सम्बन्ध में कुछ गडबड मालूम होती है । नोटिसेज ऑव संस्कृत म्यैनुस्क्रिप्ट्स्, ग्रन्थ, पृष्ठ २०६–१० पर इस नाम वाले ग्रन्थ का उल्लेख किया गया है, इसमें ग्रन्थकार का नाम कहीं नहीं लिखा है फिर भी डॉ० आफ्रेट (कैटेलोगस् केटेलोगरम भाग २, पृ० ४४) बीकानेर सूचिपत्र के पृ० ३०५ में लिखे गये ज्योतिषिमणिमाला से इसकी समानता बतलाते हैं, परन्तु नोटिसेज में दिये गये प्रस्तुत उद्धरणों से यह अभिज्ञान असम्भव मालूम होता है । जो ग्रन्थ मैंने देखा है वह बीकानेर सूचीपत्र में उल्लिखित ग्रन्थ से समानता रखता है । रचनाकाल को बतानेवाली पद्यशब्दावाली समान है केवल एक शब्द का अन्तर है । गाङ्ग शब्द, जो पिछली हस्तलिखित बीकानेर की पुस्तक में हैं, के बदले पूर्व प्रति में हमने गदवी शब्द देखा है इसलिये पूर्व की में इसका रचना काल पिछली से ४०० वर्ष प्राचीन दिखाया गया है (सं० १६४० के बदले सं० १२४० है,) डा० पिटरसन के अलवर सूचीपत्र संख्या१७८३) में एक ज्योतिर्मणिमाला नाम है,जिसको उन्होंने बीकानेर सूचीपत्र की उल्लिखित हस्तलिखित प्रति के समान बतलाया है । परन्तु, डॉ० ऑफ्रेट इस अभिज्ञान को ठीक नहीं मानते (कैटलोगस् कैटेलोगरम्, भाग २, पृष्ठ २०१) परन्तु, फिर भी कुछ ऐसी बातें हैं जो इस पुस्तक की प्रस्तुत ज्योतिषमणिमाला से समानता बतलाती हैं । दोनों ही में कर्त्ता और कर्त्ता का पिता क्रमशः केशव और हरिनाथ है और ग्रन्थ की समाप्ति 'गोरजलग्नाधिकारे अष्टादश स्तवक' के नाम से होती है । इसलिये यदि अलवर में उपलब्ध ग्रन्थ मेरे द्वारा देखे गये इस ग्रन्थ के समान हो, तो वह बीकानेरवाले ग्रन्थ के भी अवश्य समान है । परन्तु, ऊपर दिये गये उद्धरण और अलवर सूचीपत्र में उद्धृत इसके पक्षसाधक उद्धरण इतने भिन्न हैं कि पृथक् २ ग्रन्थों से उनकी समानता बिलकुल नहीं हो सकती । केवल हस्तलिखित प्रतियों में प्रतिपादित विषय सूचि के मीलान से ही इस बात को सुलझाया जा सकता है ।

आदिशर्मरचित जातकामृत पर स्वोपज्ञ टीका।

लघुजातके वार्त्तिकविवरणटीका मतिसागरोपाध्याय कृत।

जयचन्द्रिका – ज्योतिष शिवदेवकृत – हस्तलिखित प्रतिका समय १५६८ सम्वत् है।

समरसिंहकृत – कर्मप्रकाश पर टीका, टीकाकार नारायण भट्ट सामुद्रिक।

दैवज्ञविलास – कञ्चयल्लार्यकृत।

अवधूतसागर – बल्लालसेन कृत।

हितोपदेश (वैद्यक) श्रीकण्ठशम्भुकृत।

वाग्भट का शरीर स्थान – अरुणदत्त की टीका समेत।

तन्त्रमहार्णव।

तिलकमञ्जरी की ताडपत्रीय हस्तलिखित प्रति। इसके सम्बन्ध में मुझे यह बताया गया कि काव्यमाला में सम्पादनार्थ इस प्रति को उपयोग में लिया गया था।

सूक्ष्मार्थविचारसार – जिनवल्लभ कृत।

पार्श्वनागकृत आत्मानुशासन।

जिनशतकपञ्जिका - साम्बसाधु कृत।

स्यादिशब्दसमुच्चय - अमरचन्द्र कृत। यह जिनदत्त सूरि के शिष्य हैं। ग्रन्थकार काव्य कल्पलता के निर्माता ही मालूम होते हैं।

समयसार नाटक – शुभचन्द्र कृत अध्यात्मतरङ्गिणी टीका समेत, सं० १५७०।

सप्तव्यसनकथा – सोमकीर्तिकृत।

न्यायसार टीका – न्यायतात्पर्य दीपिका, विजयसिंहसूरिकृत।

धर्मरत्नकरंडक – वर्द्धमानाचार्य कृत।

संग्रहणी टीका और सप्तति टीका – मलयगिरिकृत।

नवतत्त्वप्रकरण पर धनदेव द्वारा सं० ११७४ में रचित टीका। साथ में जिनचन्द्रगणि कृत भाष्य समेत। जिनचन्द्रगणि को ही बाद में देवगुप्ताचार्य नाम दिया गया।

सिद्धसेन सूरिकृत – प्रवचनसारोद्धारवृत्ति।

धर्मोपदेशमाला – जयसिंहाचार्य।

दर्शनसत्तरीवृत्ति।

पञ्चलिङ्गी पर जिनपति की टीका, जिसका विवरण पिटरसन के परिशिष्ट पृ. २५० पर है।

आसडकृत विवेकमञ्जरी पर बालचन्द्रकृत टीका।

क्षेत्रसमास पर मलयगिरिकृत टीका।

अङ्गविद्या।

जिनयुगलचरित – जयसिंहसूरिकृत।

धर्मरत्नवृत्ति, सिद्धान्तसंग्रहभूषा – शान्तिसूरिकृत । ताड़पत्रीय हस्तलिखित ग्रन्थ का सम्वत् १३०६ है ।

हरिविक्रमचरित महाकाव्य – चारित्रप्रभसूरि के शिष्य जयतिलककृत ।

भाष्यत्रयवार्तिक – ज्ञानविमलसूरिकृत । रचनाकाल सं० १४५४ ।

३३—जैसलमेर में खरतरपट्टावली की एक हस्तलिखित प्रति को मैंने देखा (यह जैन सम्प्रदाय के खरतर शाखा के आध्यात्मिक गद्दीधारियों की सूची है) । मैंनेइ सकी प्रतिलिपि बनवाई । यह क्षमाकल्याण द्वारा बनाई गई मालूम होती है + इसमें ७० वें-अन्तिम नाम (जिनहर्ष) तक विवरण आता है जो क्लाट की सूची में दिये हुए जिनहर्ष के अनुसार ही है; परन्तु, इस नामवाले का किसी भी प्रकार का विवरण नहीं है । ऐसा मालूम होता है कि यह श्रीजिनहर्ष के निजानुशासन में बनाई गई थी अर्थात् सम्वत् १८५६ से पूर्व नहीं । पट्टावली में क़्लाट के दिये हुये विवरण से कुछ और भी अधिक विवरण दिया गया है । इनमें से कुछ तो ऋषिमण्डल प्रकरणवृत्ति के हैं, जो डा० भांडारकर की रिपार्ट १८८३-८४ (पृष्ठ १३०-१३८) के लिए मेरे द्वारा सारांश रूप से तैयार किये गये हैं । यह देखा जायगा कि ४१ वें जिनचन्द्र से आगे प्रत्येक चौथा नाम क्लाट की सूची में जिनचन्द्र और ४३ वें जिनवल्लभ से आगे प्रत्येक आनेवाला नाम जिन शब्द से आरम्भ होता है । प्रस्तुत पट्टावली में इसका कारण बताया गया है । जिनचन्द्र (४१ संख्यक) महान् हुए थे और इसलिये पद्मावती ने प्रत्यक्ष होकर उन्हें आदेश दिया कि प्रत्येक चौथा आचार्य जो पट्ट पर अभिषिक्त हो उनके नाम से अभिहित किया जाय । इसी प्रकार शासन देवता के आदेश अन्यान्य परम्पराओं के मूल में भी कारण बन गये ।

३४ – मैं प्रस्तुत पट्टावली के मुख्य मुख्य विवरणों को निम्नलिखत क्रम में बताऊंगा:– महावीर ३० वर्ष तक इस कुल के नायक रहे । जम्बू (२) के बाद कुछ मानसिक शक्ति के दश उदात्त गुण और आध्यात्मिक शक्ति के विकास के साधन पृथ्वी से अदृश्य हो गये (१) मनः पर्यायज्ञान (२) परमावधिज्ञान (३) पुलाकलब्धि (४) आहारक शरीर (५) क्षपणक श्रेणी (६) उपशम श्रेणी (७) जिनकल्पमार्ग (८) परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसम्पराय, यथाख्यात, चारित्र । (६) केवलज्ञान (१०) सिद्धिगमन । १८ वें चन्द्र से कुल का नाम चन्द्रकुल कहलाया । इसलिये जब खरतरगच्छ के किसी अनुयायी को दीक्षित किया जाता है, तो बृहद्दीक्षा के समय यह परम्परा है कि उसे ऐसा अनुशासन किया जाय कि उसका कोटिक गण वयरी (वज्री) शाखा, और चान्द्र कुल है । एक आख्यायिका है कि किस प्रकार ८४ गच्छों का आरम्भ ३८ वें उद्योतन के शिष्यों से हुआ । वर्धमान उद्योतन का शिष्य था और उद्योतन ने उसे आचार्य पद दिया तथा धार्मिक यात्रार्थ भेज दिया । परन्तु, उसके पास ८३

+ ४४ वें जिनदत्त के सम्बन्ध में निम्नलिखित शब्द उद्धृत किये गये हैं " श्री जिनदत्त सूरीणां गुरूणां गुणवर्णनम् । क्षमा दिकल्याण नाम्ना मुनिना लेशतः कृतम् । सुविस्तरेण तत्कर्तुं सुराचार्योऽपि न क्षमः !

+ उसके सम्बन्ध के शब्द केवल ये हैं:– तत्पट्टे सप्ततितमाः श्रीजिनहर्षसूरयः ७०

और शिष्य थे जो उसके नहीं बल्कि ८३ अन्य स्थविरों के थे। एक अवसर पर ग्रहयोग को देख कर प्रसन्नमना आचार्य ने कहा कि यदि ऐसे अवसर पर मैं किसी भी पुरुष के सिर पर अपना हाथ रख दूंगा तो वह प्रसिद्ध बन जायगा। ८३ शिष्यों ने इस कृपा के लिये अनुरोध किया जिसकी उन्हें स्वीकृति मिल गई। और वे ८३ शिष्य आचार्य पद को प्राप्त कर भिन्न २ प्रान्तों में आचार्य बन गये। इस प्रकार ८४ गच्छ बन गये। वर्द्धमान के समय अर्बुदाचल पर्वत पर, ऋषभदेव के मंदिरनिर्माण के संबंध में, ऐसा कहा जाता है कि ब्राह्मणों ने वहां पर अपना तीर्थ होने का दावा किया परन्तु रुपया देने से उनका संतोष हो गया। 'अणहिल्ल र' में एक ओर जिनेश्वर और बुद्धिसागर तथा दूसरी ओर चैत्यवासियों के बीच हुए झगड़े का विस्तृत विवरण है। अन्त में, चैत्यवासियों के पराजय के कारण उनका नाम 'कंवला:' रखा गया। सम्वेगरङ्गशाला के रचयिता जिनचन्द्र के बारे में लिखा गया है कि उसका दिल्ली में मौजदीन सुरत्राण ने बड़े सम्मान से बहुमान किया। अभयदेव ने एक धार्मिक व्याख्यान के प्रसङ्ग में शृङ्गार आदि नवरसों का असामयिक वर्णन करने के पाप के प्रायश्चित रूप में जो अत्यधिक आत्मोत्सर्ग किया उसको भी वर्णन है। जिनदत्त का एक लम्बा विवरण दिया है जिसमें बताया गया है कि उन्होंने एक अवसर पर कुछ योगिनियों से (स्त्रीविशेष जो जादू की शक्ति रखती हैं) सात वरदान सात शर्तों पर लिये। उनमें से दो शर्तें निम्नलिखित हैं (१) जो कोई भी जिनदत्त का नाम उच्चारण करेगा उसे बिजली आदि का डर नहीं रहेगा; और (२) कोई भी सद्गृहस्थ जो खरतरगच्छ का अनुयायी होगा वह सिन्ध जाकर धनवान बन जायगा। योगिनियों ने इस बात की भी पहले सूचना दी कि खरतर-गच्छ के नेता जिनमें पूर्ण बल न हो, वे दिल्ली, भरूकच्छ, उज्जैन, मुलतान, उच्छ और लाहौर में रात्रिवास न करें। ऐसा बताया जाता है कि एक बार उनके जीवनकाल में कुछ ब्राह्मणों ने एक मृतक गौ को वृद्ध नगर के जिन चैत्य में डाल दिया, और यह अफवाह फैलाते रहे कि जैनों के देवता गोसंहारक हैं। तब जिनदत्त ने गाय को जिला दिया, वह फिर शिव के मन्दिर में गई और वहीं मूर्ति पर गिर कर मर गई। एक बार उसने विक्रमपुर में, संक्रामक बीमारी से केवल जैनों को ही नहीं बल्कि माहेश्वरों (शिवजी के उपासक लोगों) को भी बचाया, जिसके फलस्वरूप बहुत से माहेश्वर जैनधर्म के अनुयायी होगये। जिनचन्द्र (सं० ४६) के समय, जो १३७८ सम्वत् में निर्वाण को प्राप्त हुए, गच्छ को राजगच्छ का विशेष सम्मानयोग्य नाम प्राप्त हुआ। जिनकुशल ने जैसलमेर में जसधवल की आज्ञा से चिन्तामणि पार्श्वनाथ की मूर्ति बनवाकर स्थापित की। मेरे द्वारा इस पुस्तक के परिशिष्ट १ में दिये गये जैसलमेर से प्राप्त पार्श्वनाथ के मन्दिर के शिलालेखों से विदित होगा कि जिनकुशल से पट्टावली क्यों आरम्भ हुई। उसके शिष्य विनयप्रभ ने अपने भाई की समृद्धि के लिये गौतमरास की रचना की। अब भी जिनकुशल संसार में "दादाजी" नाम से विख्यात है। बेगड़ खरतर शाखा के उद्भव का कारण यह दिया है कि एक बार जिनोदय के समय, धर्मवल्लभ को आचार्य बना दिया गया। परन्तु, उसके दोषों के कारण उसे स्थानच्युत कर दिया गया। इसी तनाव से धर्मवल्लभ ने गुस्से में आकर इस बेडखरतर शाखा की

स्थापना की। जिनोदय के बाद से १६ यतियों से ज्यादा इस सम्प्रदाय में यति नहीं हो सकते; जब कोई बीसवां होता है तो एक मर जाता है। जिनवर्धन सूरि ने चतुर्थव्रत (ब्रह्मचर्यपालन) किस प्रकार भङ्ग किया और किस प्रकार उसका पद जिनभद्र को दिया गया इसका भी वर्णन है। उसने जैसलमेर के पार्श्वनाथ मन्दिर में मूर्ति की स्थिति के लिये दखल की इसलिये कुछ साधुओं ने नेतृत्व किया और राय मांगने के लिये सभी स्थानों से गच्छ के सदस्यों को भाणसोलग्राम नामक स्थान पर बुला भेजा। अन्तिम जिनराज के शिष्य भादु को निश्चित कर सागरचन्द्राचार्य ने सात भकार के संग्रह का लाभ उठाया और भादु को उचित विधियों से पट्ट का आसन दिया। भाणसोलग्राम में सात भकारोंका सम्मेलन इस भांति हुआ। यह निर्वाचित व्यक्ति भाणसालिक गोत्र का था, भादु उसका मूल नाम, भरणी नक्षत्र, भद्रकरण (ज्योतिष के हिसाब से दिन का एक भाग भद्रकरण कहलाता है) भट्टारक पद और जिनभद्रसूरि इस निर्वाचित व्यक्ति को नया नाम दिया गया। परन्तु, जिनवर्धन सूरि जो इस प्रकार पदच्युत होगया था, उसका नाम कम से कम, जैसलमेर के पार्श्वनाथ मन्दिर में जब तक इन दो शिलालेखों की स्थिति है तब तक स्थायी रहेगा। उसके निर्देश से ही मन्दिर का निर्माण कार्य पूरा हुआ, साथ ही विधि विधान से इसकी प्रतिष्ठा की गई। सागरचन्द्र, जिन्होंने विशेष रूप से जिनवर्धन का नाम रखने में पूर्ण सहायता दी, वही महाशय हो सकते हैं जिनका इन दोनों शिलालेखों में से दूसरे में उल्लेख हुआ है। जिनहंस (५६) के विषय में कहा जाता है कि पातिसाही, आगरा ने कुछ समय तक जिनहंस के विरुद्ध कान भरे जाने के कारण धवलपुर में झूठी अफवाहों के आधार पर उसे कैद कर लिया परन्तु, बाद में छोड़ दिया और बादशाह को अनुकूलता प्राप्त हुई। रावल मालदेव का जिनचन्द्र (संख्या ६१ को) संवत् १६१२ में जैसलमेर में सूरिपद का प्रतिष्ठापूर्ण सम्मान देने के सम्बन्ध में नामोल्लेख है। इसलिये इस स्थान पर रावलों की सूचि में जोड़े जाने के लिये जैसलमेर के शिलालेखों पर एक नाम और मिला। इस जिनचन्द्र के विषय में धर्मसागर और अन्य लोगों के साथ विरोध खड़ा करने और अभयदेव खरतरगच्छ का है, इसकी सत्यता के सम्बन्ध में विवरण आता है। यह धर्मसागर प्रवचनपरीक्षा का कर्ता हो सकता है जिसको मैंने आरम्भ में पहले देखा (डा० भाण्डारकर की रिपोर्ट १८८३-८४ पृष्ठ १५१ से १५५)। धर्मसागर ने जिनहंस को अपना समसामयिक बताया है और उसका ग्रन्थ रचना समय १६२६ सम्वत है। यह न तो पट्टावली में उद्धृत समय से मेल खाता है और न क्लाट की दी हुई सारभूत तालिका से ही। अकबर ने जिनचंद्र (सं० ६१) को युग-प्रधान की पदवी से विभूषित किया और अकबर की इच्छा से जिनसिंह उसका उत्तराधिकारी घोषित किया गया। १६६६ सम्वत में जिनचन्द्र ने सलेमपातिसाहि के द्वारा निकाले गये समस्त जैनों के खिलाफ एक फरमान का विरोध किया क्योंकि बादशाह सलीम ने एक यति को, जिसे अपने सुन्दर गायनादि के कारण वह बहुत अधिक चाहता था, एक दिन अपनी बेगम के साथ बात करते हुए देखकर निकाला था।

मेरा प्रथम दौरा जैसलमेर का कार्य पूरा होते २ समाप्त हो चुका, तब मैंने अपने पण्डित को बीकानेर भेजा। वह इसी क्षेत्र का निवासी था। मैंने उसे इस प्रदेश में स्थित हस्तलिखित पुस्तक-सग्रहालयों के सम्बन्ध में उपयुक्त जानकार समझा ताकि वह सभी संग्रहों की सूचना ले सके और उनकी एक एक स्थूल रूपरेखा तथा एक सूचि तैयार करले। वह इस काम में तब तक पूर्ण रूप से व्यस्त रहा जब कि अपने दूसरे दौरे पर जाने के लिए उसने मेरा साथ न कर लिया।

अपने दूसरे दौरे में प्रथम स्थान जो मैंने देखा वह उदयपुर था। जनवरी सन् १९०४ में मेवाड़ के रेजीडेंएट महोदय ने मुझे सूचित किया कि मेवाड़ दरबार ने उन्हें यह रिपोर्ट दी है कि उदयपुर में राजकीय पुस्तकालय में संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों का अच्छा संग्रह है और उनके निरीक्षणार्थ मैं आ सकता हूँ। फिर, उसी वर्ष अप्रेल में उन्होंने मुझे उस स्थान के व्यक्तिगत संग्रहों की भी सूचना दी। उसी वर्ष के अन्त में उन्होंने मुझे फिर लिखा कि उन्होंने व्यक्तिगत रूप से यह ज्ञात किया है कि उदयपुर के जिन संग्रहों का उन्होने उल्लेख किया है उनमें संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों के अमूल्य संग्रह हैं। उन्होंने फिर मुझे यह लिखा कि उस समय उदयपुर में प्लेग की संक्रामक बीमारी फैली होने के कारण मेरे लिये यात्रा करना शक्य नहीं होगा। यह जानते हुए कि प्लेग का आक्रमण फिर से किसी भी समय होजाय और यह आशा करते हुए कि रेजिडेण्ट महोदय की सूचनानुसार मेरा काम उदयपुर में ही सन्तोषजनक रूपसे पूरा हो सकता है क्योंकि रजिडेन्ट महोदय को ऐसे कार्य में पूरी दिलचस्पी है, अतः सर्व प्रथम मैंने उदयपुर जाने का ही निश्चय किया। १९०५ के दिसम्बर के मध्य में १ या २ दिन पहले उन्होंने मुझे लिखा कि मेरे आगमन और दौरे की सूचना उन्होंने उदयपुर दरबार को देदी है। और जब मैं १५ जनवरी १९०६ के दिन उदयपुर पहुंचा तो पूछताछ करने से पता चला कि उदययुर दरबार द्वारा कोई भी आदेश उस समय तक मेरे पुस्तकालय निरीक्षण के सम्बन्ध में अधिकारियों को प्राप्त नहीं हुआ था। दीवान साहब को, जिनसे मिलने के लिये मुझे कहा गया था, यह भी पता नहीं था कि उनके पास ऐसा कोई सग्रंह भी है या नहीं। उस समय रेजिडेण्ट और दरबार महोदय दौरे पर पधारे थे। परन्तु मेरे एक मित्र श्रीगौरीशङ्कर ओझा, जो स्वयं एक अच्छे पुरातत्वज्ञ हैं, और दूसरे उस स्थान के पुलिस सुपरिण्टेण्डेंट, इन दोनों महानुभावों की सहायता से मैंने व्यक्तिगत भण्डारों को देखने का अपना काम सन्तोषजनक रीति से किया। अन्त में, दरबार के आवश्यक आदेश भी विलम्ब से प्राप्त हो गए जिससे मुझे राजकीय संग्रहालय को देखने का भी अवसर मिल ही गया।

३७-यहां मैंने राजकीय पुस्तकसंग्रह सहित ११ संग्रहालयों को देखा। इनमें सबसे बड़ा राजकीय संग्रहालय है। यह सुरक्षित और व्यवस्थित है परन्तु, हस्तलिखित पुस्तकें खुले

किताबखानों में हैं जहां चूहे बड़ी सरलता से पहुंच सकते हैं। एक व्यक्तिगत जैन संग्रहालय और दूसरा जैन भण्डार ये दोनों ही सुव्यवस्थित और सुरक्षित थे; अन्य संग्रहों की देखभाल भली प्रकार नहीं हो रही थी। इनमें से दो तो एक समय बहुत ही सुन्दर पुस्तकभण्डार रह चुके थे। यहां राजकीय संग्रहालय की और अन्य दो या तीन संग्रहालयों की सूचियां बनी हुई थीं।

३८—इन हस्तलिखित प्रतियों में, जिन्हें मैंने देखा, निम्नलिखित प्रमुख हैं:—

आश्वलायनसूत्रवृत्ति — त्रैविद्यवृद्धतालवृन्त निवासीकृत।
गौतमधर्मसूत्र पर हरदत्त की टीका मिताक्षरा, रचनाकाल १६४५ सं०
देवीमाहात्म्य कौमुदी — रामकृष्ण कृत।
भगवती-पद्य-पुष्पाञ्जलि।
एक पुराणानुक्रमणिका — जिसमें पुराणों के नाम और संक्षिप्त सारांश हैं।
स्मृति-प्रबन्ध-संग्रह-श्लोक — गंगारामजड़ीकृत

कृत्य कल्पतरु — लक्ष्मधरकृत — यह श्रीपिटरसन द्वारा अपनी १८८२—८३ की रिपोर्ट में पृष्ठ १०८—१११ में सूच्युपनिबद्ध किया गया। जैसा कि श्री पिटरसन (अपनी रिपोर्ट १८८४—८६ के साथ संलग्न परिशिष्ट पुस्तकसूचि में) अनुमान करते हैं और कृत्य-रत्नाकर शीर्षक मानते है, वह एक भूल मात्र है।

माधवकृत काल-निर्णयकारिका पर भट्ट श्रीनीलकण्ठ पौत्र भट्टशङ्कर-पुत्र भट्ट-साम्ब की टीका।

वीरमित्रोदय परिभाषाप्रकाशः— यह चौखम्बा संस्कृत सीरीज में प्रकाशित हो चुका है. इसमें २२ प्रकाश परिगणित हैं जिनका इस ग्रन्थ में समावेश है। इस परिभाषाके अतिरिक्त मैंने लक्षण और पूजाप्रकाश भी देखे। हिजहाईनेस महाराज बीकानेर के सरस्वती भण्डार में मैंने ज्योतिः कर्म विपाक, चिकित्सा और प्रकीर्ण को छोड़कर सब प्रकाश देखे अर्थात् १४ प्रकाश जो कि प्रारम्भिक विवरण में जो परिभाषा प्रकाशके संस्करण में दिये हुए हैं, और जो ४ उनमें से बाहर के हैं, उनके साथ संलग्न हैं।

परशुराम प्रताप — एक निबन्ध जामदग्न्य वत्सगोत्र के साबाजी प्रतापराजा द्वारा निर्मित जिसको राजराजेश्वर निजामशाह ने सम्मानित किया। प्रताप का पिता पद्मनाभ था।

वार्ष्णि-संहिता — कर्मों का विषय प्रतिपादन करने वाली।
वैष्णव धर्म सुरद्रुम-मञ्जरी — सङ्कर्षणशरणकृत।
तिथिनिर्णय — चक्रपाणिकृत।
वैराग्य-पञ्चाशतिका (५०) कलकलोपनामक सोमनाथकविकृत।

सभ्यालङ्करण–गोविन्दभट्टकृत – एक पद्य–संग्रह जिसमें सभी कृतियों के रचयिताओं के नाम दिये गये हैं।

प्रबोधचन्द्रोदयकौमुदी - प्रबोधचन्द्रोदय पर टीका सदात्ममुनिकृत। ग्रन्थ के अन्त में वंशावली दी हुई है परन्तु, एक अन्तिम पत्र जिसमें इसका एक अंश था, बिलकुल खोगया। टीकाकार का सन्यासी बनने से पहले मूलनाम गदाधर था। हस्तलिखित (मैन्युस्क्रिप्ट का समय सम्वत् १५७१ और शक १४३६ सम्वत् हैं।)

रघुटीका – मुनिप्रभगणिके शिष्य धर्ममेरुकृत।

सम्वादसुन्दर –जिसमें बहुत सुन्दर छोटे २ वार्तालाप हैं; शारदापद्मयो; गाङ्गेयगुञ्जयोः दारिद्र्यपद्मयोः, लोकलक्ष्म्योः, सिंहीहस्तिन्योः; सनन्दनयोः, गोधूमचणकयोः पञ्चानामिन्द्रियाणां दानशीलतपोभावानां।

विद्वद्भूषण पर टीका मूल लेखक के शिष्यद्वारा सारसंग्रह –शम्भुदासकृत एक संग्रह।

श्रवणभूषण – नरहरि कृत।

हरिहरभूषण काव्य – गंगारामकविकृत।

सुभाषितसारसंग्रह – मिश्र पुरुषोत्तम के पुत्र मिश्रठाकुर कृत।

पाणिनीयद्व्याश्रय विज्ञप्तिलेख :- अच्संधि और हल् संधि। नलोदय पर मनोरथ कविकृत टीका विबुधचन्द्रिका।

अनघराघव पञ्चिका – मुक्तिनाथार्य के पुत्र विष्णुकृत। बहुत ही प्राचीन प्रतिलिपि है धनञ्जय के द्विसमाधान या राघव पाण्डवीय पर एक टीका। पद कौमुदी–नेमिचन्द्ररचित। नेमिचंद्र विजयचन्द्र पण्डित के अन्तेवासी देवनन्दि का शिष्य था। नेमिचन्द्र कृत राघव पाण्डवीय को प्रति लिपि बूहलर के १८७२–७३ की संख्या १५४ के संग्रह में इसी टीका की प्रति है।

शृङ्गार तरङ्गिणी – सूर्यदासकृत

गीतगोविन्द पर शङ्कर मिश्र की टीका

कातन्त्रलघुवृत्ति – भावसेनत्रैविद्यकृत

षड्भाषाविचार (संस्कृत और पांच प्राकृत)

सारस्वत पर टीका – मोहन मधुसूदन के अनुज दत्त परिवार के मथुरावास्तव्य ब्राह्मण द्वारिक के पुत्र तर्कतिलक भट्टाचार्यकृत। इन्होंने अपने प्रिय शिष्यों के अनुरोध पर वैशेषिक सूत्रों पर आरम्भ की गई टीका को छोड़कर इसे टोड नामक नगर में जब जहांगीर राज्य करता था, सम्वत् १६७२ में लिखी। यह राजेन्द्रलाल के नोटिसेज

(८, पृ० २८३ – ४) में लिखे गये कालमाधवीय विवरण के रचयिता ही हैं जो १६७० सम्वत् में रचा गया था। हस्तलिखित प्रति का समय १६६१ सम्वत् है।

वाग्भटालङ्कारवृत्ति – वाचक ज्ञानप्रमोदगणिकृत । सलेमशाहि और नवकोट्टपति गजसिंह के राजत्व काल में स० १६८१ में विरचित। मारवाड़ या जोधपुर का राजा गजसिंह उस समय शासन करता था।

लघुकाव्यप्रकाश—रचयिता का नाम अज्ञात। जिसमें काव्यप्रकाश कारिकांश (छन्दाभाग) ही समझाया गया है और उसका अर्थ बताने वाले गद्य भाग को नहीं समझाया गया है।

मञ्जरीविकास – रस-मञ्जरी पर एक टीका ; कौडिन्य गोत्रके नृसिंहाचार्य के पुत्र गोपालाचार्य कृत, उसका दूसरा नाम बोपदेव है (स्टेन; पृष्ठ ६३ और २७१-३) युगरन्ध्रवेदाधरणीगण्येङ्गिरोवत्सरे। रंध्र का अभिप्राय है ६, इसलिये समय १४६४ है न कि स्टेन द्वारा आकलित १४८४ संवत्। यद्यपि इसमें काल नहीं लिखा गया है परन्तु बदलते रहने वाले वर्ष का अङ्गिरस् नाम देने से यह शक समय है, इस बात को प्रगट करता है। इसलिये स्टेन के द्वारा बताये गये हस्तलिखित ग्रन्थ का समय भी शक सम्वत् होना चाहिए। अतः समय १५१४ है।

छन्दोमञ्जरी पर टीका – वंशीवादन कृत।

हेमचन्द्र कृत छन्दोऽनुशासन स्वोपज्ञ टीका या सर्वालङ्कारसंग्रह (या अलङ्कार संग्रह) कवीश्वर अमृतानन्द या अमृतानन्द योगी रचित। भक्ति राजा के पुत्र और सूर्य एवं चन्द्र कुल दोनों के आभूषण-स्वरूप राजा मन्म ने ग्रन्थकार से अनुरोध किया कि उसके लिये अलङ्कार साहित्य के भिन्न २ विषयों का, जिनको पहले अलग २ टीकाओं में बताया गया है, एक सरल रुप में निरूपण किया जाय। मन्म नामक दो राजा कोनमण्डलीय राजवंश में प्रसिद्ध हैं अर्थात (१) मन्म चोड़, द्वितीय और (२) मन्म सत्य द्वितीय या मन्म सत्ति। प्रथम बेट का पुत्र था जिसका नामकरण भक्ति के साथ पार्श्ववर्त्ती रह सकता है। मन्म चोल का समय ११३५ और ११५३ ई० सन् के बीच में कहीं भी हो सकता है।

काव्य निरूपण–रामकवि कृत। इसमें जो उदाहरण दिये गये हैं वे सब ग्रन्थकार के स्वरचित हैं और उनका सम्बन्ध रामसिंह या राम हरि से है।

रसपद्माकर - गंगाधर कृत जो वत्सराज का पुत्र और श्रीराम का अनुज था।

ब्रह्ममीमांसाभाष्य–श्री कंठशिगाचार्य ।

आत्मार्कबोध–जिसका पुस्तक के एक पार्श्व पर परमार्थबोध नाम दिया है जो हरिनाथ के शिष्य रामनाथ के शिष्य मुकुन्दमणि कृत है। इसकी रचना ग्रन्थकार ने उस समय की जब जैत्रपाल ने विनयावनत होकर विद्या के वास्तविक तत्त्व को बालबोधार्थ निरूपण करने की प्रार्थना की।

संक्षेप शारीरक – एक टीका समेत, टीकाकार रामतीर्थ के शिष्य अग्निचित् पुरुषोत्तम मिश्र।

कृष्णस्तवराजटीका – श्रुतिसिद्धांत (निम्बार्क०) मञ्जरी

औदुम्बरी संहिता–उदुम्बरर्षिकृत जो निम्बार्क–शिष्य था।

गीतातात्पर्य–विट्ठल दीक्षित।

भक्तिरसाब्धि-कणिका-गोविन्ददास के पौत्र और भगवद्दास के पुत्र गंगाराम रचित।

भावार्थदीपिका–गौरीकान्त–महाकवि कृत।

लक्षणसमुच्चय–भिन्न २ पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या बताने वाला ग्रन्थ।

तर्कभाषाविवरण – माधवभट्ट कृत जिसे प्रकाशानन्द का अन्तेवासी बतलाया गया है।

वराहमिहिर संहिता की हस्तलिखित प्रति जिसका समय सं० १५५७ है, जो महाराव श्री सूर्यमल्ल के राज्यानुशासन में जोधपुर में लिखी गई।

बृहज्जातक टीका–केरली। हस्तलिखित प्रति अपूर्ण है और ग्रन्थकार का नाम मुझे नहीं मिल सका। टीका का आरम्भ "या होरा रचिता वराहमिहिराचार्येण" से होता है।

अमरभूषण–अमरसिंह रचित नहीं, जैसा कि पिटरसन के अलवर सूचिपत्र (पृ०–७३) में उद्धृत है, परन्तु उसके नाम के ऊपर यह रचा गया, जैसा कि उसी सूचीपत्र के पृ० १६८ के सारोद्धार में बताया गया है। अन्त में दिये गये श्लोकों में रचयिता का नाम मथुरात्मज लिखा है। श्लोक जो कम से कम प्रति में हैं वहुत अशुद्ध हैं और अमरसिंह की वंश प्रशस्ति इस प्रकार उद्धृत की गई है:— राणा उदयसिंह, शक्तिसिंह, भाणसिंह, पूरण, रावल ?, मोहवर्मा और अमरेश। हस्तलिखित ग्रन्थ युवानसिंह का है और समय सं० १८६१ और शक १७५६ है। युवानसिंह मेवाड़ का जवानसिंह ही मालुम देता है। (ईस्वी सन् १८२८–३८)।

सिद्धान्तकौस्तुभ - लल्लगोलाध्याय और रोमश।

मिताङ्क सिद्धान्त – विश्नाथ मिश्र द्वारा शक १५३४ में रचित।

सिद्धान्तसुन्दर – गणिताध्याय – नागनाथ के पुत्र ज्ञानराज कृत समय शक १५४२ है।

सिद्धान्तबोधप्रकाश (ज्योतिष)–जगन्नाथ देवज्ञ कृत।

लीलावती प्रकाश – वर्धमान कृत सं० १६६५।

खवायण संहिता - आरम्भः– शवायणं धूम्रपुत्रं रोमकाचार्यो वदति (Cf.) ऑक्सफोर्ड ३३८ बी०)।

त्रिकालज्ञानविश्वप्रकाशचूड़ामणि – श्री शिव कृत।

योग समुच्चय - गणपति कृत। रचनाकार व्यास महोत्तम का पुत्र था जो ब्राह्मण मल्लदेव का पुत्र था।

चण्डीसपर्याक्रम – कल्पवल्ली – श्री निवास कृत।

रूपावतार और रूपमण्डन – सूत्रधार मण्डन कृत।

मैंने ये और निम्नलिखित ग्रन्थ हस्तलिखित रूप में जो वास्तुविद्या पर हैं एक प्राचीन भवन - निर्माता के वंशज के अधिकार में देखे। उसका नाम चम्पालाल है। उस सज्जन के पास एक ताम्रपत्र है जिसमें यह बताया गया है कि उसे (मण्डन) मोकलान ने गुजरात से विशेष रूप से बुलवाया था क्योंकि मेवाड़ दरबार में उस समय कोई विशिष्ट

स्थापत्य कला विज्ञ नहीं था और उसे एक गांव भेंट रूप में दिया आदि। इस ताम्रपत्र का समय १४६२ है। मोकलान वही मोकल है जिसने १३६८ ईस्वी सन् में अपने भाई को गद्दी से उतार दिया था। यह कहा जाता है कि मण्डन ने कुम्भलगढ़ और उसके भाई नाथ ने चित्रकूट बनाया।

वास्तुमञ्जरी - सूत्रधार नाथ कृत यह क्षेत्र का पुत्र और उक्त मण्डन का भाई था।

उद्धारधोरणी - स्थपति गोविन्द कृत जो मंडन का पुत्र था।

कालनिधि (स्थापत्य)--सूत्रधार गोविन्दकृत।

द्वारदीपिका - उसी रचनाकार द्वारा रचित।

गृहवास्तुसार - ठक्कुर फेरु जो परम जैन चन्द्र श्रीधंकलस परिवार का पुत्र था। १३७२ (सम्वत् ?) में यह प्राकृतग्रन्थ कमाणपुर में लिखा गया है।

प्रमाणमञ्जरी (स्थापत्य)- मल्लकृत जो कि मुञ्ज और भोज के कुल के आभूषण भानुराज का स्थपति था।

नानाविधकुण्डप्रकार - मल्लकृत जो नकुल स्थपति का पुत्र था। नकुल सौम्मेल दुर्ग के अधिपति भानुराज का प्रधान स्थपति था।

भुवनदेवाचार्योक्त - अपराजितपृच्छा।

वास्तुराज - सूत्रधार राजसिंह।

क्षीरार्णव - विश्वकर्मा द्वारा रचित।

कुण्डोद्योतदर्शन - नीलकण्ठ भट्ट के पुत्र शंकर भट्ट कृत। यह भास्कर नामक टीका ग्रन्थकार के पिता द्वारा कुण्डोद्योत पर है और १७२८ में रची हुई है।

श्रीपति द्विवेदी के पुत्र विश्वनाथ कृत टीका स्वरचित ग्रन्थ कुण्डरत्नाकर पर।

वास्तुतिलक - पुष्पिका में ग्रन्थकर्ता, उसके पिता और उसके पितामह का नाम दिया हुआ है। परन्तु पुष्पिका बहुत अशुद्ध है और केवल पिता का नाम केशवाचार्य स्पष्ट रूप में दिया हुआ है।

विश्ववल्लभ - मथुरा के ब्राह्मण कुलोत्पन्न मिश्र चक्रपाणि रचित। इसमें कुए खोदना, उद्यान लगाना, आदि विषयों का निरूपण किया गया है। इसकी रचना उदयसिंह मेवाड़ाधिपति के ज्येष्ठ पुत्र श्री प्रतापसिंह की इच्छा से हुई है। अन्त में दिया हुआ सम्वत् १६३४ ही इसका रचनाकाल हो सकता है।

आसड़कृत उपदेश कन्दली।

लघुसङ्घपट्टक - जिन वल्लभकृत।

मरणसमाधि (जैन) हस्तलिखित ग्रन्थ का समय सं० १५४२ है।

उपदेशतरङ्गिणी। (जैन) कहानियां हैं।

प्रबोधचिन्तामणि-जयशेखर कृत जो सम्वत् १४६२ में निर्मित हुआ।

स्थानाङ्गमूल-शुद्धि-विवरण - जो अभयदेव सूरि के अनुज देवचंद्र द्वारा सं० १२४६ में रचा गया है। ग्रंथकार के आध्यात्मिक गुरुओं की वंशावली अन्त में दी हुई है।

३६-अपने उदयपुर प्रवास में एक दिन के लिये मैं वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायियों

को तीर्थ-भूमि नाथद्वारा गया। मैंने वहां पर दो संग्रहालयों के सम्बन्ध में सुन रक्खा था। एक बड़े महाराज का और दूसरा छोटे महाराज का। पहला मैं देख सका और दूसरे के लिये मुझे बताया गया कि उसका देखना सम्भव नहीं। जैसी कि आशा थी, इसमें बल्लभ-सम्प्रदाय के ग्रन्थों का ही बाहुल्य था। निम्नलिखित कुछ उत्कृष्ट ग्रन्थ मैंने यहां पर देखे।

सारसंग्रह-शम्भुदास कृत।

मृगांङ्कशतक-कङ्कण कवि कृत। एक कंकण कवि वल्लभदेवकृत सुभाषितावली तथा सूक्ति कर्णामृत में भी आया है।

रोमावली शतक-रामचन्द्रभट्ट दत्त कृत।

एक बिरुदावली – अकबरीय कालिदास कृत।

एक कादम्बरी की हस्तलिखित प्रति जिसमें बाण कवि के पुत्र का नाम पुलिन्द दिया हुआ है जबकि स्टेन के मेन्युस्क्रिप्ट में (२६६ पृ०) पुलिन है। इस नाम के लिये श्री गौरी-शङ्कर ने मेरा ध्यान पहले भी आकृष्ट किया था, जिसे वे उदयपुर स्थित विक्टोरिया म्यूजियम के एक हस्तलिखित ग्रन्थ में देख चुके थे।

व्यक्ति विवेक – उस राजा की वंशावली दी हुई है जिसके नाम से इसका निर्माण हुआ था। सरयू नदी के इस ओर एक यो (गो ?) रक्षा या नारायणपुर था। वहाँ (१) अमरसिंह, (२) विक्रमसिंह (१) का पुत्र, (३) तेजसिंह (२) का पुत्र, (४) शक्तिसिंह (३) का पुत्र, (५) जयसिंह (४) का पुत्र जिसने युद्धक्षेत्र में दो सुरत्राणों से सामना कर सिंह का विरुद सत्य ही अन्वर्थ कर दिया, (६) रामसिंह (५) का पुत्र, (७) चामुण्डसिंह (६) का पुत्र जिसने अयोध्या के यवन राजा को पराजित किया और दिल्ली के पातशाह का खजाना लूटा। इसका दूसरा नाम रुद्रसिंह था और एक विकृत पंक्ति से उदङ्कराज भी मालूम देता है। वह अकालघन (एक बादल जिसकी किसी विशेष ऋतु की मर्यादा नहीं होती) कहलाया क्योंकि सभी समय वह सोने की बौछार किया करता था। उस राजा ने ही अपना नाम स्थायी करने के लिये इस टीका को बनवाया। यह तिलकरत्न और अकालघन नाम से भी कही जाती है।

मीमांसा कारिका – बल्लभकृत।

जैमिनीसूत्रभाष्य-उसी के द्वारा।

वल्लभ के अनुभाष्य पर इच्छाराम की टीका भाख्यप्रदीप नामक।

पीताम्बरसूनु पुरुषोत्तम रचित एक दूसरी टीका।

वेदान्ताधिकरणमाला - उसीके द्वारा निर्मित जो कि वल्लभभाष्यानुसारिणी होनी चाहिए।

मानमनोहर-वागीश्वराचार्य के पुत्र वादिवागीश्वर कृत। इस ग्रन्थकार और इस की रचनाओं के सर्वदर्शनसंग्रह और अन्य स्थलों में जैमिनी दर्शन पर उद्धरण है (हाल, पृष्ठ ४४ और आक्सफोर्ड सूचिपत्र २४५ ब, २४७ अ) हस्तलिखित पुस्तक का समय १५४७ हैं।

परमानन्दविलास (वैद्यक) बलभद्र के पुत्र परमानन्द कृत।

तुरङ्ग परीक्षा—शार्ङ्गधर कृत।
अश्वशास्त्र—जयदत्त कृत।
रत्नपरीक्षा—अगस्त्य कृत।

इस संग्रह की कुछ पुस्तकें अवलोकनार्थ दे दी गई थीं अतः सूचि में लिखे गये उत्प्रेक्षावल्लभ को मैं न खोज सका।

४०—उदयपुर से मैं बीकानेर चला गया जैसा कि मैंने अपनी पहली रिपोर्ट के अनुच्छेद ५७ में लिखा है। इस स्थान (बीकानेर) के पोलिटिकल एजेण्ट से पूछने पर मुझे यह उत्तर मिला कि राज्य के पुस्तकालय के अतिरिक्त कोई व्यक्तिगत अथवा सार्वजनिक हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रहालय नहीं है। चूंकि स्टेट पुस्तकालय की सभी हस्तलिखित संस्कृत ग्रन्थों की सूचि श्री राजेन्द्रलाल द्वारा बनायी जा चुकी है, ऐसा विश्वास किया जाता था। अतः मैं यह सोचने लगा था कि इस स्थान पर मेरा जाना निरुद्देश्यक होगा। परन्तु एल्फिन्स्टन कालेज के पण्डित ने जो इसी भाग का निवासी था, मुझे सूचित किया कि श्री राजेन्द्रलाल द्वारा सूचिनिबद्ध किये जाने के उपरान्त भी बहुत अधिक हस्तलिखित ग्रन्थ बिना सूचि बनाये राज्य पुस्तकालय में रह गये हैं। इसके अतिरिक्त जैसलमेर से प्राप्त पट्टावली में भी, जिसका विवरण ऊपर दिया गया है, बीकानेर एक ऐसा स्थान बताया गया है जहां से साभार पूर्वक बहुत अधिक निमन्त्रण पत्र कई उच्च जैनाचार्यों के पास आया करते थे और वे लोग उन निमंत्रण-पत्रों का आग्रह मान कर उन स्थानों पर जाया करते थे। इसलिये बीकानेर जैसे स्थान में ऐसी आशा की जा सकती है कि यहां जैन भण्डारों की स्थिति अवश्य है। साथ ही वह पंडित जो मेरे साथ काम करने के लिये विशेष रूप से नियुक्त किया गया था, बीकानेर का निवासी था और उसीने मुझे विश्वास दिलाया था कि उस स्थान में और भी बहुत से हस्तलिखित पुस्तकों के भण्डार हैं। इसलिये मैंने जैसलमेर से लौट कर उसे बीकानेर भेज दिया, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है। अपने अध्यक्षीय कार्यालय में राज्य के भंडार की सर्वाङ्ग सुन्दर सूचि बनाने के अतिरिक्त अब तक वह १६ अन्यान्य छोटे या बड़े संग्रहालयों की सूचि बना चुका था। इन १६ में से ३ ब्राह्मण संग्रहालय थे। अवशिष्ट सब जैन संग्रहालय थे। मेरे पण्डित ने उन ब्राह्मणों के नाम ला दिये जिनको या तो वह जानता था या जिनके लिये वह जानता था कि अमुक के पास हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। परन्तु ऐसे लोगों से किसी भी प्रकार की आशा नहीं थी कि वे उसे अपने लिये भी हस्तलिखित ग्रन्थ दिखाने और सूचि बनाने का अनुरोध करने पर मान जायेंगे।

मेरे बीकानेर पहुंचने पर बीकानेर दरबार ने एक अफसर को आज्ञा दी कि वह मुझे उन सभी स्वामियों या अधिकारी व्यक्तियों के पास ले जाय जिनके अधिकार में संग्रहालय हों, जो अबतक ढूंढ लिये गये हों या ढूंढे जा सकते हों। वह उन लोगों से अनुरोध करके मनावे कि वे अपने संग्रह मुझे दिखा दें और मेरे अनुसंधान कार्य में सभी प्रकार की आवश्यक सहायता दे। एक या दो स्थानों को छोड़ किसी जैन-संग्रहालय में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं उठानी पड़ी। दूसरे जैनों को इन भण्डारों के

स्थानों में कदाचित ही हस्तलिखित पुस्तकें देखने को मना किया जाता हो। इनमें से कुछ अधिकारी बम्बई आदि दूर दूर स्थानों पर हो आये हैं और इन लोगों में अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक उदार भावनायें काम कर रही हैं। ब्राह्मणों में यह काम इतनी सरलता से नहीं हो सका। फिर भी इस स्थान में राजकीय सहायता द्वारा जो लोग पहले थोड़ा बहुत हिचकते थे वे भी दिखाने के लिये मान गये। यह संभव है कि कुछ ने अपना सारा संग्रहालय न दिखाया हो। जिन ब्राह्मणों के पास थोड़ी भी प्रतियां होने की संभावना थी उनसे भी पूछताछ की गई। इसलिये अब यह सम्भावना नहीं कि किसी भी व्यक्ति को उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया या टाल दिया गया हो।

जब जैसलमेर के दीवान महोदय ने मुझे लिखा कि बड़े भंडार के पंच लोग अपनी हस्तलिखित पुस्तकें मुझे देखने देने को तैयार हो गये हैं, उस समय उन्होंने मुझे बताया कि देखने के लिये मुझे स्वयं मंदिर में जाना होगा, क्योंकि हस्तलिखित पुस्तकों को, देखने के लिये बाहर नहीं लाने दिया जाता। मैं विश्वास करता हूँ कि उन्होंने सोचा होगा कि यदि मुझे मन्दिर में जाने के कष्ट से बचा दिया जाता तो मैं अधिक प्रसन्न होता। परन्तु हस्तलिखित पुस्तकों को उन्हीं स्थानों पर देखना और परीक्षण करना ही मेरा काम पहले से रहा है। केवल इन्दौर में दो स्थानों को छोड कर मैंने सभी आने वाले अवसरों पर उसी स्थान पर ही काम करने में अपना महत्व अधिक समझा। यदि कोई और तरह से काम होता तो निरीक्षण का कार्य पूर्ण ही नहीं हो पाता। इसी क्रम के अनुसार जहां भी मुझे निमंत्रित किया गया मैं गया और एक हिन्दू तथा ब्राह्मण होने के नाते मुझे व्यक्तिगत घरों के अन्तर्भागों तक जाने दिया जाता। तदनुसार मुझे बीकानेर में विशेष रूप से बहुत गन्दे और बहुत असुविधाजनक स्थानों पर ही घण्टों बैठकर जैसा कि प्रतिलिपिकारों द्वारा प्रत्येक हस्तलिखित पुस्तक के अन्त में* वर्णित किया गया है, निरीक्षण करना पड़ता। परन्तु मुझे इस बात का सन्तोष था कि मैंने अपना कार्य यथाशक्ति सम्पन्न किया।

तेरह जैन संग्रहालयों के अतिरिक्त जिनकी सूचि तैयार की जा चुकी थी, मुझे तीन और का पता लगा। उन ब्राह्मण लोगों के नाम जिनकी सूचि मुझे दी गई और जिनके पास संग्रह होने की पूरी संभावना थी इक्यावन थे। जैन संग्रहालयों में से एक को मैं नहीं देख सका क्योंकि उसका अधिकारी चाबी लेकर बाहर चला गया था, ऐसा मुझे बतलाया गया। एक दूसरे के सम्बन्ध में अधिकारी महानुभाव ने केवल कुछ भाग ही दिखलाया, क्योंकि मुझे उन्होंने बताया कि बीमारी के कारण वह बाकी पुस्तकें नहीं दिखा सकेंगे और भी हस्तलिखित पुस्तकें उनके पास हैं परन्तु उन्हें केवल वे ही दिखला सकते हैं। कुछेक लोगों के घर में स्त्रियां ही थी अतः उन्हें अपने हस्तलिखित पुस्तकसंग्रह को दिखाने के लिए मनाया नहीं जा सका। ५१ में ६ के नाम बिलकुल ही

* भग्नपृष्ठकटिग्रीवं और अधःशिराः अर्थात् पीठ, कमर और गर्दन झुकी हुई तथा सिर नीचे की ओर किये हुए।

काट दिये गये क्योंकि उन्होंने बिलकुल ही अस्वीकार कर दिया कि एक भी हस्तलिखित ग्रन्थ उन के पास नहीं था। प्रायः ४० घरों के संग्रह मैंने देखे। केवल इन में से कुछ ही ऐसे थे जिनमें कुछ हस्तलिखित पुस्तकें किसी हद तक महत्वपूर्ण थीं। इन लोगों के पास प्रायः जो ग्रन्थ मिला वह भागवत था। उसी ग्रन्थ की एकाधिक प्रतियां प्रति व्यक्ति के अधिकार में सुरक्षित थीं। जैन संग्रहालयों में पुस्तकें सुरक्षित रूप में सुव्यवस्थित थी और उन में से तीन में तो इतना व्यवस्थित क्रम था कि किसी बंडल को खोजो तो तुरन्त ही उसे ढूंढ निकालो। बाद वाले दो और एक तीसरा संग्रहालय उतने अच्छे व्यवस्थित नहीं थे। परन्तु ये थे बड़े अच्छे संग्रह। एक में ५०० वर्ष या इससे भी पुराने एक बहुत ही जीर्ण हस्तलिखित ग्रन्थ की प्रति थी।

४१. अब मैं राजकीय संग्रहालय को छोड़ जिसका विवरण मैं बाद में दूंगा, सभी संग्राहालयों में प्राप्त कुछ महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित पुस्तकों की सूचि दूंगा जो निम्नलिखित हैः–

लघुस्तव टीका - लघ्वाचार्य कृत।

निर्णयसिन्धु की एक प्रतिलिपि।

व्यवहारसार - याज्ञवल्क्य का संक्षिप्त विवरण।

प्रायश्चित्तसार – उमा रामकृष्ण के पुत्र दिनकर कृत विष्णु की महोत्सवमालिका वल्लभ के सिद्धान्तानुसार आत्रेय कुल के बालकृष्ण भट्टात्मज गोकुलचन्द्र कृत।

पात्रशुद्धि (वल्लभ०) मथुरानाथ सूरि के पुत्र द्वारिकेश कृत।

लघुकारिका संस्कार प्रतिपादक ग्रन्थ – त्रिष्णु शर्मा कृत।

नवग्रहमख–वशिष्ठोक्त।

विष्णुपूजनपद्धति–हरिद्विज कृत।

रघुवंश टीका – गुणविजयगणि कृत।

रघुकाव्यदीपिका–सन्देह विषौषधि–महोपाध्याय कृष्ण भट्ट कृत समय सं० १५१८।

रघुवंश टीका तत्त्वार्थ दीपिका – कृपारामात्मज नवनीत कृत।

रघुकाव्यदुर्घट संग्रह – राजकुण्ड कृत – ग्रन्थकार वही मालूम होता है जिसने किरात के भी विविध कठिन स्थलों को समझाया है।

रघुवंश टीका पंजिका – आनन्दपति वल्लभ कृत हस्तलिखित पुस्तक रचनाकाल सम्वत १६६७।

रघुवंशकाव्यवृत्ति – अर्थालापनिका – समयसुन्दर कृत।

वासवदत्ता टीका – सावित्री और विश्वरूप के पुत्र नारायण कृत। प्रतिलिपि सं० १७२३ में की गई।

शिशुपालवधसार टीका – वल्लभ कृत।

सुभाषित मुक्तावली – व्यास हरजी कृत। रचनाकाल संवत् १७३१ है जो कि इसके सग्रह का भी तिथि काल हो सकता है।

दुर्वासःपराजयनाटक – ऊपर बताया हुआ।

मुद्रादीपिका - मुद्राराक्षस पर टीका - महेश्वर कृत।

कर्णामृत टीका – नारायण भट्ट कृत ।

सेवनभावना – हरिदास कृत ।

दुष्टदमन – भट्ट कृष्ण होशिंग कृत टीका समेत, जो कि जनस्थान निवासी भट्ट रामेश्वर का लड़का था ।

कलिकान्तकुतुक नाटक – रामकृष्ण कृत ।

ऋतुसंहार टीका – अमरकीर्त्ति सूरि कृत ।

भर्तृहरि टीका– पुष्कर व्यास के पुत्र नाथ कृत ।

दमयन्तीविवरण – चण्डपाल कृत ।

किरात पर प्रकाशवर्ष की टीका ।

चन्द्रविजयप्रबन्ध – श्रीमाल कुलालङ्करण मंडनामात्य कृत ।

रामकीर्ति प्रशस्ति – जनार्दन की टीका समेत ।

रामशतक – ठक्कुर सोमेश्वर कृत ।

रामचन्द्रदशावतारस्तुति – हनुमान्कृत । अन्त में भर्तृहरि के प्रसिद्ध श्लोक जैसे, 'लोभश्चेद, दौर्मंत्र्यान्' आदि आते हैं । यह खण्डप्रशस्ति का उद्धृत अंश है ।

नेमिदूतकाव्य – झञ्झण कवि कृत – टीका पण्डित गुणविजय कृत । कविता में कुछ पद्य हैं जिनकी अन्तिम पंक्ति मेघदूत के श्लोकों की अन्तिम पंक्ति के अनुरूप रक्खी गई है ।

अन्यापदेशशतक – उजती वंश के मैथिल मधुसूदन कृत ।

कलङ्काष्टक ।

मूर्खाष्टक ।

मेघदूत टीका – शृङ्गारसद्दीपिका–चतुर्भुज और मल्हायी के शिष्य कमलाकर कृत । यह पंडित गंगाधर और शेष नृसिंह को प्रणाम करता है ।

कालिदास के विद्वद्विनोद पर विद्वज्जनाभिरामा टीका ।

नलविलास नाटक – रामचन्द्रकृत, निर्माण सम्वत् १५१६ । सूत्रधार मुरारि का जो अनर्घराघव का रचनाकार है, वर्णन करता है ।

कुमारसम्भववृत्ति अर्थालापनिका - लक्ष्मीवल्लभगणिकृत ।

नैषध टीका धीरसूनु गदाधर कृत जो शांडिल्य गोत्रज है । टीकाकार ने ग्रन्थकार का विवरण दियाहै जिसकी राजशेखर के वर्णन से तुलना की जा सकती है जैसा बूहलरने संक्षेप किया है (जर्नल ऑव दी बोम्बे ब्रान्च ऑव रॉयल एशियाटिक सोसाइटी भाग, १०. ३२-५) । वाराणसी में गोविन्दचन्द्र नामक राजा था । उसके दरबार में पंडितों का भूषण श्रीहर्ष रहता था जिसने खण्डन (खण्डनखण्डखाद्य) ग्रन्थ लिखा । उसने साहित्य की उपेक्षा की और प्रमाण (दर्शन) में बहुत परिश्रम किया । जब कभी वह राजदरबार में आता उसके द्वेषी कई व्यक्ति जो अपने को साहित्य के ज्ञान में उससे कहीं अच्छा समझते थे सङ्केतिक आखों से एक दूसरे को देखा करते थे । एक अवसर पर उसने उनको ऐसा करते हुए देख लिया और पूछने पर उसको इसका पूरा पता लग गया । इसलिये उसने नैषधचरित

लिखा जिसमें प्रमुख रूप से शृङ्गार का निवास है और इसे राजा के पास लेगया। राजा उससे बड़ा प्रसन्न हुआ और उसे दो जगह आसन दिये; एक तार्किकों के बीच में दूसरा साहित्यकों में और तदनुसार ही राजदरबार में दो ताम्बूल की उसे भेंट देने की स्वीकृति दी। हर्ष को कविपण्डित नाम से कहा जाने लगा। जब वह कविता लिखने लगा तो उसने चिन्तामणि मन्त्र की इसलिये शरण ली कि उसको कौनसा चरित्र नायक चुनना चाहिए और वह नल को चुनने को प्रोत्साहित हुआ। राजशेखर ने उसे जयन्तचन्द्र का समसामयिक कहा है। गदाधर उसको इस समय से आधी शताब्दी पहले मानता है यदि गोविन्दचन्द्र से उसका अभिप्राय जयन्तचन्द्र के पितामह से है और अन्य व्यक्ति से नहीं जिसको हम उस तिथि से पूर्व अब तक किसी भी रूप में नही जानते हैं (जर्नल आव् दी बोम्बे ब्राञ्च ऑव दी रायल एशियाटिक सोसाइटी १०, ३७ इण्डियन एन्टी. भाग २ पृष्ठ ७२-३ और जर्नल ऑव दी बी. बी. आर० ए० सो० ११ पृष्ठ २७६-२८७)।

नैषधकाव्य विद्याधर की टीका समेत।

सांयकेलिकृत मेघाभ्युदय काव्य पर लक्ष्मीनिवास की टीका। मानाङ्क, मेघाभ्युदय काव्य का प्रायः रचना करने वाला माना जाता है। सम्भवतः सायंकेलि उसका दूसरा नाम हो।

वृन्दावन काव्य–टीका समेत।

जम्बुनाग कृत चन्द्रदूत पर टीका।

सम्वादसुन्दर – विवरण ऊपर दिया गया।

शब्दलक्षण – वररुचि कृत।

सारस्वतसार टीका, मिताक्षरा – हरिदेव द्वारा १७६६ में निर्मित।

सारस्वत सूत्र वृत्ति – तर्क तिलक कृत जो ऊपर लिखी गई है।

मध्यकौमुदी विलास – शिवराजधानी में मुनिकुलोत्पन्न गोवर्द्धन के पुत्र रघुनाथात्मज जयकृष्ण रचित।

प्रक्रियासार – काशीनाथ कृत।

धातुमञ्जरी – काशीनाथ कृत।

शब्दशोभा – भट्टोजिदीक्षित के शिष्य नीलकण्ठ कृत। यह शुक्र जनार्दन का पुत्र और वत्साचार्य का दौहित्र था।

लघुभाष्य, पञ्चसन्धियां – विनायक पुत्र रघुनाथ कृत। रघुनाथ ने भट्टोजिदीक्षित से पतञ्जलि का महाभाष्य और अन्य शास्त्र पढे और इस ग्रन्थ को वृद्धनगर में लिखा।

वृत्तीदिपका – मुनि श्री कृष्णकृत (वही ग्रन्थ जिसका उल्लेख सं० २०२७ में राजेन्द्र-लाल के नोटिसेज में दिया गया है)।

अपशब्द खण्डन – भासर्वज्ञ कृत।

गुणाकित्त्वषोडशिका सूत्र (पाणिन्यनुसार) सटीक–मूलग्रन्थ का रचनाकार जयसोम

सूरि का शिष्य गुण विनय है। उस समय गुणसिंह पट्ट पर आसीन था (पिटरसन IV इण्डि० एण्टी०)।

बाक्यप्रकाश उदय धर्म रचित। निर्माण काल सं० १५०७।

षट्कारकपरिच्छेद – महोपाध्याय रत्नपाणि कृत।

पाणिनीय परिभाषा सूत्र व्याडिकृत (३ पत्रे)।

प्राकृतव्याकरण – चण्ड कृत।

माधवीयकारिका विवरण – तर्कतिलक भट्टाचार्यकृत।

परिभाषावृत्तिललिता – पुरुषोत्तम कृत।

सुन्दरप्रकाशशब्दार्णव (उणादि साधन) पद्ममेरु के शिष्य पद्मसुन्दर कृत। हस्तलिखित पुस्तक का समय सं० १६१८ (पिटरसन ,४, इ०)। रत्नावली – सारस्वत परिभाषा न्यायावतार सूत्र पर टीका – श्री जिनहर्षसूरि के शिष्य दयारत्नकृत।

दौर्गसिंहकातन्त्रवृति टीका की एक हस्तलिखित प्रति, जिस पर वीरसूरि के शिष्य गुणकीर्ति ने शालिभद्र के लिये एक टिप्पण सम्वत् १३६६ में अणहिल वाटक में, जब अलपखां राज्य करता था, लिखा। यह अलपखां सुलतान अलाउद्दीन का साला और अलाउद्दीन के पुत्र खिजरखां का श्वसुर था (इलियट और डाउसन ३, पृष्ठ १५७ और २०८) टीकाकार प्रद्युम्नसूरि श्री देवप्रभसूरि के शिष्य हैं जो चन्द्रकुल के धर्मसूरि का शिष्य है और धर्मसूरि का शिष्य पद्मप्रभ है। इस रचना का एवं विचारसागर कर्ता एक ही है। (पिटरसन इण्डियन० ए० पृ० ३०।)

प्रबोधचन्द्र (व्या०) रामकृष्ण सूनु गतकलंक कृत।

उक्तिरत्नाकर (षट्कारकोदाहरण) – साधु सुन्दरगणि कृत।

श्योक योजनोपाय – सूरि के पुत्र नीलकण्ठ कृत जो पद्माकर दीक्षित का पौत्र था इसमें श्लोक योजना पर ३० पद्य हैं।

शब्दप्रकाश – माधवारण्यकृत।

द्वयाक्षरनाममाला और मातृका नाममाला सौमरिकृत।

एकाक्षरनाममाला – वररुचि कृत।

साहित्यकल्पद्रुम (सम्वर्द्धित) – राजराज सूरसिंह के पुत्र कर्णसिंह। ये दोनों बीकानेर के ईस्वी सन् १६३१ और १६१३ में राजा थे।

वृत्तरत्नाकार – चिरञ्जीव कृत।

काव्यप्रकाश पर भवदेव कृत टीका जो जैसलमेर में देखी गई।

काव्यप्रकाश टीका, सार दीपिका – विनय समुद्र गणि जो जिनमाणिक्य मुनि के शिष्य थे, उनके शिष्य बाचक गुणराजगणि कृत।

रामचन्द्रिका – लक्ष्मीधरात्मज विश्वेश्वर कृत।

प्राकृतपिङ्गल टीका – चित्रसेन भट्ट कृत।

वृत्तरत्नाकरवृत्ति – सुकवि हृदयानन्दिनी – सुल्हण कृत । हस्तलिखित ग्रन्थ की प्रति का समय १५६० सम्वत् है ।

छन्दःसुन्दर या प्रतापकौतुक पर टीका-मूल और टीका दोनों ही नरहरि भट्ट ने जो स्वयंभू भट्ट का पुत्र और विद्यारण्य का शिष्य है, बनाई हैं । इसमें भिन्न २ छन्दों को उदाहरण रूप में दिया गया है जोस्तोत्र कहलाता है ।

प्राकृतछन्दःकोष – रत्नशेखर कृत ।

वृत्तसार – नृसिंह मिश्रात्मज पुष्कर मिश्र कृत सम्पूर्ण ग्रन्थ दो पन्नों पर ही लिखा हुआ है ।

राधादामोदर कवि कृत छन्दःकौस्तुभ पर विद्याभूषण की टीका वाग्भटालङ्कार टीका ज्ञान प्रमोदिका – वामनाचार्य प्रमोदगणि द्वारा सम्बत् १६८१ में लवेरा में गजसिंह के शासनकाल में रचित । यह गजसिंह मारवाड़ का था ।

पातञ्जल चमत्कार – चन्द्रचूड़ कृत जिसने योग का रहस्य प्रभाकर से सीखा था ।

अधिकरण कौमुदी – रामकृष्ण कृत ।

गुरु चन्द्रोदय कौमुदी – रामनारायण कृत

अष्टोत्तर – सहस्त्र महाकाव्य रत्नावली १०८ उपनिषदों में से वासुदेवेन्द्र सरस्वती के शिष्य रामचंद्र द्वारा संकलित ।

अद्वैतसुधा – सारस्वतोपनिषद्, जिसे रघुवंश भी कहते हैं; पर टीका । इसका रचयिता लक्ष्मण पण्डित, जिसका पिता ...तसूरि था, ब्रह्मज्ञानी कुल का भूषण था । ग्रन्थकार पर उत्तम श्लोकतीर्थ महामुनि की बड़ी कृपा थी । रघुवंश का तात्पर्य बतलाते हुए ऐसा प्रयत्न किया गया है कि उसमें से वेदान्त सम्बन्धी अर्थ का विशदीकरण हो ।

भगवद्भक्ति विलास - गोपालभट्ट कृत ।

तत्त्वनिर्णय - वरदराज कृत ।

निम्बादित्य कृत दशश्लोकी पर हरिव्यासदेव की टीका ।

आनन्दतीर्थ की सदाचार स्मृति पर प्रमाणसंग्रहणी टीका ।

तत्त्वसम्बोध - रामनारायण कृत ।

भक्तिहंस विवृत्ति - भक्तितरङ्गिणी - रघुनाथ कृत ।

शाण्डिल्य संहिता (भक्ति) ।

खण्डनखण्डखाद्य टीका, विद्या सागरी - अभयानन्द के शिष्य आनन्दपूर्ण कृत । टीकाकार का उपनाम विद्यासागर था ।

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त - वेङ्कटाचार्य के शिष्य श्रीनिवास दासानुदास कृत ।

उपदेश पञ्चक सटीक - भूधर कृत ।

विवेकसार - रामेन्द्र कृत ।

न्याय प्रदीपिका - उदासीनाचार्य ब्रह्मदास शिष्य रामदास कृत ।

न्यायावतार सूत्र - सिद्धसेन दिवाकर कृत ।

शुभविजय विरचित तर्कभाषा विवरण का केवल अन्तिम पत्रा। समय सं. १६६५ वि.।

तर्कभाषा पर टीका - गंगाधर के पुत्र मुरारिभट्ट कृत। हस्तलिखित पुस्तक समय १६६२ सम्वत्। दूसरी हस्तलिखित पुस्तक में ग्रन्थकार को मुरवैरी लिखा है जो मुरारि ही है।

विद्यादर्पण (न्याय) - हरिप्रसाद कृत।

तर्कलक्षण - मणिकान्त भट्टाचार्य कृत।

बरदराज कृत तार्किक रक्षा पर सरस्वती तीर्थ की टीका।

न्यायसार पर टीका, न्यायमालादीपिका महेन्द्रसूरि शिष्य जयसिंहसूरि कृत।

आनन्दानुभव की तर्कदीपिका पर टीका अद्वयाश्रम पूज्यवाद के शिष्य अद्वयारण्यमुनि कृत। समय १६२२ सम्बत्।

न्यायप्रदीप - गोपीकान्त कृत।

न्यायसिद्धान्तदीप - शशिधर कृत। १६३१ संवत् की प्रतिलिपि सिद्धान्त शिरोमणि जैसे ज्योतिष ग्रन्थों सुश्रुत, आत्रेयसंहिता, भावप्रकाश, चरक, अष्टांगहृदय और इस पर अरुणदत्त टीका आदि आयुर्वेद ग्रन्थों की भी बहुत सी प्राचीन प्रतिलिपियां हैं।

वृद्धगार्गीय ज्योतिश शास्त्र।

ग्रहभावप्रकाश टीका - भट्टोत्पल कृत।

वर्षतन्त्र या नीलकण्ठताजित। १५०६ शकाब्द में गर्गगोत्रोत्पन्न - चिन्तामणि, के पौत्र एवं अनन्त के पुत्र नीलकण्ठ द्वारा विरचित।

कर्ण कुतूहल पर टीका पद्मनाभ कृत।

रामकृत 'समर सार' पर उसके अनुज भरत की टीका।

टीकासार समुच्चय जिसमें भिन्न २ वर्षों पर टिप्पणियां हैं।

ग्रन्थकार ने रुद्रस्वामी की शुक्ल टीका का उद्धरण दिया है। हस्तलिखित प्रति पर समय १३२२ सम्वत् लिखा है। यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि यह ग्रन्थ निर्माणकाल है अथवा लिपिकाल है।

जातकार्णव - वराहमिहिर रचित।

शौनकीय विवाहपटल - प्रतिलिपि सम्वत् १५८८ है, जब हुमायूं मुगल आगरा में राज्य करता था।

महेन्द्रसूरि के यन्त्रराज पर मलयेन्दु सूरि की टीका।

श्रीपति कृत जातक पद्धति पर बल्लाल दैवज्ञ के पुत्र कृष्णदैवज्ञ की टीका।

नीलकण्ठ कृत संज्ञातन्त्र।

प्रश्नावली मुनिमाधवानन्द शिष्य जड़भारत कृत।

बुधसिंह शर्मा कृत प्रशोधनी टीका स्वरचित ग्रहणादर्श पर।

अमृतकुम्भ - राम के पुत्र नारायण द्वारा सं० १५८२ में लिखित।

सम्वत्सरोत्सवकाल निर्णय – पुरुषोत्तम रचित।

लीलावती टीका – परशुरामकृत।

लीलावती टीका – सुवर्णकार भीमदेव सूनु मोषदेव कृत।

सामुद्रिक – अमरसिंह सूनु दुर्लभराज कृत।

शार्ङ्गधरदीपिका – आढ़मल्ल कृत।

पथ्यापथ्य विबोध – केयदेव कृत।

कौतुकचिन्तामणि -- प्रताप रुद्रदेव कृत।

कुलप्रदीप शैवमत कुलकमलदिवाकर विद्याकण्ठ ने श्रीरामकण्ठ से पढ़ कर ग्रन्थकार को पढ़ाया और आदेश किया कि इसका सरल और छोटा विवरण जो सर्वजन सुबोध्य हो लिखो। ग्रन्थकार की कामना है कि कौल (कुलीन) इसे पढ़ेंगे और प्रसन्न होंगे।

शिवार्चन चन्द्रिका ४६ प्रकाशों में।

कौलखण्डन – गौड़ काशीनाथ द्विज कृत।

पञ्चायतन प्रकाश (मन्त्र) – चक्रपाणि कृत।

लौकिक न्याय संग्रह – वही ग्रन्थ है जो राजेन्द्रलाल की टिप्पणि में संख्या ३१३६ पर अङ्कित है। केवल इसकी पुष्पिका में ग्रन्थकार का नाम रघुनाथदासजी का लिखा है।

बालचन्द्र प्रकाश (धर्म० ज्यो० आयुर्वे० आदि) पद्मनाभ के पुत्र विश्वनाथ कृत। राजाधिराज राय ढोल के पुत्र बालचन्द्र ने लिखवाया।

श्यैनिकशास्त्र (मृगया) रुद्रदेव कृत।

असम बाण – शासनानुसृत शास्त्र – वीरभद्र कृत जिसमें ग्रन्थकार ने वात्स्यायन के काम सूत्र के विषयों को आर्या छन्दों में लिखा है।

जयमंगला की एक प्रति, कामसूत्र पर टीका जिसमें २,३ स्थलों पर निम्नलिखित पुष्पिकायें हैं "इत्यपराजु र्नभुजबलमल्लराज-नारायण-चौलुक्यचूड़ामणि–महाराजाधिराज श्रीमद्विसलदेवस्य भारती भाण्डागारे श्री वात्स्यायनीय कामसूत्र टीकायां जयमंगलाभिधानायां" आदि २ कामसूत्र के अंग्रेजी अनुवादकर्त्ता ने अपने ग्रन्थ में जो बनारस की हिन्दू कामशास्त्र सोसाइटी (स्कमिड्स इण्डि० इरोटिक पृ० २४-५.) के लिये प्रकाशित हुई है। इसकी हस्तलिखित प्रति में से इसी पुष्पिका का प्रतिरूप उद्धृत किया है। वेबर की बर्लिन स्थित हस्तलिखित पुस्तक संख्या २२३८ और राजेन्द्रलाल की हस्तलिखित पुस्तक प्रति सं. २१०७ में यह पुष्पिका इस प्रकार है। "इति अपराजु र्न जबल मल्लराज नारायण महाराजाधिराज चौलुक्य चूड़ामणि श्रीमहीमल्लदेवस्य भारती इत्यादि" यह सब इसी बात को बतलाते हैं कि यह टीका वीसलदेव के लिये लिखी गई। चौलुक्य राजा महीमल्ल नामक कोई नहीं हुआ जब तक कि वह वीसलदेव की पदवी न हो। वीसलदेव सन् १२४३ से १२६१ सन् तक राज्य करता था और स्कमिड् ने टीकाकार का १३ वीं शताब्दी में होना बतलाया है।

विनोद संगीतसार – हस्तलिखित प्रति पुरानी है।

सन्मति टीका – प्रद्युम्नसूरि शिष्य अभयदेव कृत।

वासुपूज्य चरित – विजयसिंह सूरि के शिष्य वर्धमान कृत।

उपमितभवप्रपञ्चकथा . हरिभद्र शिष्य सिद्धरचित।

धर्मरत्न करण्डक सटीक – अभयदेव शिष्य वर्धमान कृत। टीका सम्वत् ११७२ में दायिक कूप में लिखी गई और राजा जयसिंह को समर्पित की गई।

उत्तराध्ययनसूत्र पर लक्ष्मीवल्लभ कृत टीका।

कल्पकिरणावलीव्याख्या – धर्मसागरगणि रचित सं० १६२८।

पुष्पमालावचूरि निर्माण सम्वत १५१२।

एकीभाव स्तोत्र टीका – वादिराज कृत।

सोमकीर्त्याचार्य कृत प्रद्युम्नचरित – निर्माण – समय अस्पष्ट है,

सिद्धान्तसारोद्धार–खरतर गच्छी जिनहर्षसूरि के शिष्य कमलयमोपाध्य य कृत।

जैनमतीय रामचरित्र–हेमाचार्य कृत।

विद्यालय स्थान–जयवल्लभ कवि कृत।

न्यायार्थमञ्जूषिकान्यास मूल और टीका दोनों ही हेमहंसगणि कृत हैं।

सिद्धहेमचन्द्राभिधान – शब्दानुशासन द्वयाश्रयवृत्ति जिनेश्वर सूरि के शिष्य अभयतिलकगणि कृत।

विदग्धमुखमंडन पर टीका – नरहरिभट्ट कृत।

ज्ञानार्णव – एक ध्यान शास्त्र, आचार्य शुभचन्द्र द्वारा जिनपति सूत्र से सार रूप में उद्धृत।

जैन तर्क भाषा – यशोविजयगणि कृत।

स्थानाङ्गवृत्ति – मेघराज मुनि विरचित।

सोमशतक प्रकरण – सोमप्रभाचार्य कृत।

प्रबोधचिन्तामणिकाव्य – कवि जयशेखर कृत।

सूक्तिश्रेणि – गुण विजय महोपाध्याय कृत।

उत्तराध्ययन वृत्ति, सुख बोध, सम्वत् ११२९ में नेमिचन्द्रसूरि द्वारा रचित। नेमिचन्द्रसूरि का उस समय की तपागच्छ पट्टावलियों में भी उल्लेख है।

प्रशमरति पर अवचूरि – मानदेव के शिष्य हरिभद्रसूरि कत रचना का सम्वत ११८५ है।

जिनवल्लभ कृत पिण्ड विशुद्धि पर उदयसिंहसूरि की वृत्त सं० १२९५।

विचार संग्रह – आगमों के समुद्र में से अमृत रूप में तपागच्छ के कुलमण्डन द्वारा सं० १४४३ में दोहन किया गया (पिटरसन, ४ इन्डि० ए०)।

मेघदूत या नेमि जिनचरित – सागण के पुत्र विक्रम कृत मेघदूत के श्लोकों की अन्तिम पंक्तियां चतुर्थ पाद में समस्यापूर्ति की भांति प्रयुक्त हुई हैं।

विसम्वाद शतक समयसुन्दर कत - सूत्र और वृत्तियों के अन्तर का निरूपण करता है।

उपदेश रत्नाकर - मुनि सुन्दर सूरि कृत (पिटरसन, ४ इ. ए.)।

शृङ्गारवैराग्यतरङ्गिणी - शतार्थवृत्तिकार सोमप्रभाचार्य कृत। इसी पर सुख बोधिनी टीका - नन्दलाल रचित।

द्विजवदनचपेट का (एक वेदाङ्कुश) - हरिभद्रसूरि कृत।

द्विजवदनचपेटा वेदाङ्कुश - हेमचन्द्र कृत। इसमें पुराणों, धर्मशास्त्रों, विवेक विलास आदि से समुद्धृत सारवाक्य हैं।

धर्मसर्वस्व (सदाचार के आधार भूत सिद्धान्त सिखाने के लिये है)।

विदग्धमुखमण्डन पर टीका - ताराभिद्य कवि रचित।

प्राकृत विज्ञालऊ पर टीका-रत्नदेव द्वारा सं० १३६३ में निर्मित।

४२-अब मैं बीकानेर राजकीय संग्रहालय के सम्बन्ध में लिखता हूं। यह देखकर अत्यन्त सन्तोष हुआ कि हस्त० ग्रन्थ सुरक्षित और सुन्दर ढंग से सज्जित थे। जिस किसी बन्डल को देखने की जरूरत पड़े उसे सरलता से देखा जा सकता था। मुझे यह बताया गया कि महाराजा का ध्यान इस ओर है कि एक सुन्दर कक्ष में जो कि एक सुन्दर भवन में बनाया जारहा है तथा जिस के साथ साथ और भी मकान बनेंगे, इसे रक्खा जायगा। मैंने इस बात का पहले भी उल्लेख किया है कि मुझे यह बताया गया था कि राजेन्द्रलाल के सूचिपत्र के अतिरिक्त संग्रहालय में और भी ग्रन्थ हैं जिन्हें उस (सूचिपत्र) में सम्मिलित नहीं किया गया था। मुझे यह सूचना ठीक ही मिली थी। सूचिपत्र बन जाने के बाद ये अतिरिक्त हस्तलिखित ग्रन्थ न खरीदे ही गये थे और न संग्रहालयाधिकारी अध्यक्ष ने उस समय सूचिपत्र बनाने के लिये उन्हें प्रस्तुत ही किया। सम्भवतः उसे यह सन्देह हुआ हो कि जो पुस्तकें सूचि में लिखी जारही हैं उनका न मालूम क्या उपयोग हो। मैं उन पुस्तकों में से कुछ की सूचि दूंगा जो सूचिपत्र में नहीं आई थीं :—

श्रीसूक्तभाष्य - कार्णाटक लिङ्गण भट्ट रचित।

कात्यायनश्रौतसूत्रभाष्य - अनन्तदेव कृत।

आल्हादलहरी - ज्ञानी महापात्र कृत। इसकी संख्या राजेन्द्रलाल के सूचिपत्र में ४७४ है परन्तु इसकी रचना सं० १६३५ उसमें नहीं दिया हुआ है।

प्रायश्चित्तप्रदीपिका - केशव कृत - ग्रन्थकार का नाम पार्श्व में लिखे "केशवी" शब्द से लिया गया है। ग्रन्थकार का कथन है कि (आपस्तम्बीय) प्रायश्चितप्रकाश भास्करराय द्वारा रचित २०० पद्यों में धूर्त स्वामी के अनुसार विशदरूपेण प्रतिपादित किया गया और वह स्वयं अपने बुद्धिस्थ पदों को सरलता से सुबोध हो सके, इस लिये अब लिख रहा है। भास्करराय ग्रन्थ आपस्तम्ब प्रायश्चित शतद्वयी होना चाहिए जिसे बर्नेल ने अपने तन्जौर के सूचिपत्र पृष्ठ २७६ में उद्धृत किया है और शतद्वयी में जो भाष्य का संकेत है वह धूर्तस्वामी का है।

पराशर टीका – विद्वन्मनोहरा–नन्दपण्डित कृत ।

माधवकारिकाव्याख्यान – नीलकण्ठ सुत भट्टशङ्कर पुत्र भट्ट शंब रचित ।

लक्ष्मीधर भट्ट के कृत्यकल्पतरु के नीति राजधर्म, व्यवहार और कालकाण्ड ।

पूर्व सूचित परशुराम प्रताप की एक प्रतिलिपि १५५६ सं० की ।

गोविन्दमानसोल्लास या मानसोल्लास, गोविन्ददत्त कृत । देवादित्य, कर्णाट वंश के राजा हरसिंह का सचिव था । उसका पुत्र गणेश्वर अपने बड़े भाई वीरेश्वर मंत्री का उसी प्रकार भक्त था जैसे लक्ष्मण राम के भक्त थे, प्रस्तावना में आगे बताया गया है कि यह गणेश्वर मिथिला के राजा द्वारा अङ्ग प्रान्त के महासामन्त पद पर नियुक्त किया गया था । उसका पुत्र गोविन्द था । अब यह जान लेना कठिन नहीं है कि हरसिंह कौन व्यक्ति था । हरसिंह नामक एक नैपाल का निवासी भी है जिसे श्रीभगवान्लाल द्वारा इण्डि. एण्टी. में (पृ. १८८) प्रकाशित नैपाल के एक शिलालेख में 'कर्णाट चूडामणिरित्र' बताया गया है, यद्यपि आधुनिक नेपाल की राजवंशावलियों में वह कर्णाटक वंश के ठीक बाद में आता है । दूसरे शिलालेख में उसका नाम हरिसिंह लिखा है और बताया गया है कि उसने मिथिला में तड़ाग खुदवाये और नेपाल को बसाया (पृष्ठ १९०–१) । उसका समय वंशावली के अनुसार १३२४ ईस्वी सन् है । भवेश का पुत्र मिथिला का निवासी हरसिंह भी है, जिसके राज्य में चण्डेश्वर द्वारा १३१४ ईस्वी सन् में रत्नाकर नामक ग्रन्थ लिखा गया था (हॉल का सांख्यप्रवचनभाष्य पृ० ३६) । ये दोनों और वर्तमान हरिसिंह एक ही नाम वाले हैं । भवेश का पुत्र हरिसिंह इनसे पृथक् है जिसका उल्लेख सन्मिश्रमिशरु के विवादचन्द्र में हुआ है (अक्सफोर्ड कैटेलोग पृष्ठ २९६ ए०) । गोविन्दमानसोल्लास का उल्लेख राघवानन्द भट्टाचार्य विरचित मलमास-तत्त्व में भी हुआ है जिसकी स्थिति १४३१ और १६१२ ईस्वी सन् के बीच में थी ।

शृङ्गारसरसी–मिश्र लटक के पुत्र मिश्रभाव कृत । इसमें शृङ्गार सम्बन्धी भिन्न २ पदार्थों का पद्य रूप में निरूपण है ।

पद्यमुक्तावली–रुद्रन्यायवाचस्पति भट्टाचार्य के पुत्र गोविन्द भट्टाचार्य कृत ।

सूक्तिमुक्तावली विद्यानिवास भट्टाचार्य के पुत्र विश्वनाथ कृत सुकृतकल्लोलिनी अर्थात् वस्तुपालान्वय (वंश) की प्रशस्ति उदयप्रभ कृत । इसका आरम्भ "चापोत्कट वनराज, योग-राज आदि" से होता है ।

आठ अष्टक – जैसे हंसाष्टक, मयूराष्टक, गजाष्टक आदि

सुभाषितरत्नाकर – निर्मलनाथ के पुत्र उमापति पण्डित कृत ।

हॉल् की गाथासप्तशती पर टीकाएं कुलनाथदेव, प्रमुख सुकवि और मण्डल भट्ट तनय माधव भट्ट कृत । अंतिम व्यक्ति मिहिरवंशके कृष्णदास के द्वारा टीका लिखवाने को प्रेरित किया गया ।

दुष्टदमन पर टीका ।

कविंद्रचन्द्रोदय, राजेन्द्रलाल की टिप्पणी में सं० ८१५ पर लिखा हुआ ग्रन्थ । उक्त

टिप्पणी में संग्रहकर्ता का नाम विद्यानिधि कविंद्र दिया हुआ है । परन्तु श्री राजेंद्रलाल द्वारा उद्धृत 'श्रीमतकाशी…' पद्य से एवं स्वयं ग्रन्थकार के, 'विषयाह…' शीर्षक पद्य की अन्तिम से पूर्व वाली पंक्ति से विदित होगा कि यह नाम सही नहीं है । कृष्ण तो संग्रहकर्ता का नाम है और विद्यानिधान (अथवा विद्यानिधि) कवीन्द्र आचार्य सरस्वती इस ग्रंथ के कर्ता हैं जिनकी प्रशस्ति में काशी, प्रयाग व अन्य कितने ही स्थानों के कवियों के पद्य इसमें संग्रहीत हैं । इसी राजकीय संग्रहालय में इसी कवि की प्रशंसा में निर्मित एक और ग्रन्थ भी है जिसका नाम 'सर्वविद्यानिधान कवीन्द्राचार्य सरस्वतीनां लघुविजयछन्दःपुस्तकम्' है । इस पर एक टीका है । इन प्रशस्तियों का विषय ग्रन्थकार है जिसे कविन्द्रकल्पद्रुम, हंसदूत-काव्य आदि पुस्तकें लिखने का श्रेय है ।

जगदम्बाभरण – जगन्नाथ पण्डित कृत ।

आभाणक शतक ।

अमरूशतक पर टीका सञ्जीवनी – अर्जुनवर्मदेव रचित, जो भोजकुल के राजा सुभटवर्मा का पुत्र है । इसी ग्रन्थ पर नन्दिकेश और अनवेमभुपाल कृत अन्य टीकायें ।

सुन्दरीशतक – उत्प्रेक्षावल्लभ गोकुलभट्ट कृत । यह सम्वत् १६४८ में लिखी हुई है जब अकबर लाहोर में रहते हुए पृथ्वी का शासन कर रहा था । यह कविता काव्यमाला भाग ६ में प्रकाशित हुई जिसे १६५३ सम्वत् की हस्तलिखित पुस्तक से मिलाकर छापा गया है । कविता निर्माण समय उसमें नहीं बतलाया गया है ।

अधरशतक – वत्साचार्य के दौहित्र शुक्ल जनार्दन और हीरा के पुत्र भट्ट मण्डन के शिष्य शैव कवि नीलकण्ठ कृत (ओष्ठ शतक के समान ही है; वेबर का बर्लिन कैटेलोग पृ० १७१) । शब्दशोभा को बनाने वाला ही इस ग्रन्थ का निर्माता है जिसका ऊपर विवरण आगया है ।

विरहिणी मनोविनोद – पदमात्र प्रकाशिका टीका समेत–मूल और टीका दोनों का कर्त्ता विनय (विनायक ?) कवि ।

शृंगारसंजीवनी – नीलमणि के पौत्र गौरीपतिपुत्र हरिदेव मिश्र कृत ।

शृंगारपञ्चाशिका – वाणीविलास दीक्षित कृत ।

गीतगोविन्द टीका, साहित्यरत्न माला – अनङ्गनाथ और म्हाश्मा के पुत्र शेष कमलाकर कृत । इस हस्तलिखित प्रति पर शक संवत् १५७८ लिखा है ।

कृष्णगीता – सोमनाथ कृत । यह गीतगोविन्द और बाद की ऐसी ही कृतियों के समान है ।

नलविलासनाटक और निर्भरभीमव्यायोग – आचार्य हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र कवि कृत ।

अनर्घराघव पर टीका, रहस्यादर्श–देवप्रभ कृत ।

लिङ्गदुर्गभेदनाटक (वीर रस प्रधान और गौण शान्ति रस युक्त)–दादम्भट्ट

परमानन्द रचित ।

कंसवध टीका – शेष कृष्ण सुत वीरेश्वर कृत ।

सम्भवतः इस नाटक के कर्ता शेष कृष्ण ही है ।

उषानिरुद्ध नाटक – काशी के किसी राजा लक्ष्मीनाथ कृत । नरोत्तम और काशीनाथ इसके बादमें सिंहासन के अधिकारी बताये गये हैं ।

(विभावन–?) कुसुमावचय लीला नाटक – मधुसूदन सरस्वती कृत । कइ प्रहसन जैसे प्रासङ्गिक, सहृदयानन्द, विबुधमोहन, अद्भुत तरंग, सभी ग्रन्थ गौड़ विद्यानाथ के पौत्र लाल मिश्र के पुत्र हरिजीवन मिश्र रचित हैं । राजारामसिंह के आदेश से अद्भुत तरंग लिखी गई । ग्रन्थकार की लिखी विजयपारिजात (राजेन्द्रलाल की सं० १२९) की हस्तलिखित पुस्तक मिली है जो १७३० में लिखी हुई है । इसलिये रामसिंह वह नहीं हो सकते जो १७५० ई० में जोधपुर में सिंहासनासीन थे ।

कलिकान्ता कुतूहल प्रहसन त्रिपथी कल्याणकर के पुत्र रामकृष्ण कृत । उपरिवर्णित कलिकान्ता कुतुक नाटक पुस्तक की समान प्रति मालूम होती है ।

गोरी दिगम्बर प्रहसन – शङ्कर मिश्र कृत ।

कादम्बरी पर टीकायें – बालकृष्ण और सोमयाज्ञिक मुद्गल महादेव कृत ।

वासवदत्ता पर टीका – प्रभाकर कृत ।

गुणमन्दारमञ्जरी – रङ्गनाथ रचित ।

सीतामणिमञ्जरी – रामानन्द स्वामी कृत ।

गोपालविलास – मधुसूदन यति कृत ।

मुकुन्दविलास – पुरुषोत्तम तीर्थ के शिष्य रघूत्तम तीर्थ कृत ।

कृष्णलीलामृतलहरी विट्ठल दीक्षित के पुत्र दैवज्ञ रघुवीर दीक्षित कृत ।

भगवतत्प्रसाद चरित – यमुना और विश्वनाथ के पुत्र दामोदर कृत और इस पर एक टीका भी है ।

चण्डीशतक टीका – धनेश्वर कृत यह ब्राह्मण सोमनाथ या दशकुर ज्ञाति के सोमेश्वर का पुत्र है । हस्तलिखित प्रतिका सं० १६२५ है ।

ऋतुवर्णन काव्य –दुर्लभ कृत सटीक ।

उदार राघव – मल्लारि कृत ।

रामचरित काव्य – रघूत्तम कृत ।

ब्रह्मदूत काव्य – न्याय वाचस्पति भट्टाचार्य कृत ।

गोपालाचार्य कृत यमक महाकाव्य – रामचन्द्रोदय, स्वरचित टीका समेत ।

लक्ष्मण पण्डित कृत राघव पाण्डवीय टीका ।

नलोदय पर टीकायें गणेश कवि और सर्वज्ञ मुनि कृत । पदार्थ (प्रकाशिका) ।

शतश्लोकी काव्य – राक्षस मनीषी कृत । यह सटीक है, टीकाकार शान्त कुटुम्बी

ऋष्यशृङ्ग ।

नैषध पर टीकायें – विद्याधर और पण्डित लक्ष्मण रचित (गूढार्थ प्रकाशिका) ।

प्रतिनैषध काव्य – नन्दनन्दन कृत यह सं० १७०८ में विरचित है, जब शाहजहां राज्य करता था ।

रघुवंशावली दुर्घटोच्चय – राजकुण्ड कृत ।

एक पद्यावली, जिसकी हस्तलिखित पुस्तक का समय १६४६ संम्वत् है इसका सम्पादक केवल अपने को द्विजबन्धु लिखता है । उसने ऐसे श्लोक (रचयिताओं के नाम के साथ) संकलित किये हैं, जिनमें मुकुन्द भगवान की स्तुति है । इसमें जयदेव एवं बिल्व मंगल के बनाये हुए पद्य नहीं हैं ।

वाक्यभेदविचार – अनन्तदेव कृत ।

बाक्यपदीय – वाक्य खण्ड टीका पुष्पराज कृत ।

प्रयुक्ताख्यात मंजरी – ग्रन्थकार कहता है कि उसने भट्टमल्ल की अद्भुत पुस्तक आख्यात चन्द्रिका से उपयोग में आनेवाले मूल शब्दों का संग्रह किया है ।

एकार्थाख्यातपद्धति – भट्टमल्ल कृत ।

वृत्तमुक्तावली और वृत्तमुक्तावलीतरल – मल्लारि कृत ।

अलङ्कारतिलक – भानुदत्त कृत ।

शिशुबोध काव्यालङ्कार – कवि माधव सुत विष्णुदास कवि कृत ।

चतुरचिन्तामणि – मिश्र सन्दोह सूनु गंगाधर कृत ।

शृङ्गारतिलक टीका, रसतरङ्गिणी, – द्रविड़ हरि भट्ट सूनु गोपाल भट्ट रचित ।

कवि कुतूहल – कवि धौरेय मल्लारि कृत ।

सहस्राधिकरण सिद्धान्त प्रकाश (मीमांसा) भट्ट नारायण सुत भट्ट शङ्कर कृत ।

पञ्चपादिका टीका – आनन्द पूर्ण या विद्यासागर कृत । यह खण्डनखण्डखाद्य का टीकाकार विद्यासागर ही मालूम पडता है ।

वेदान्त प्रक्रियाहार – कूर्म कृत ।

सूक्तिमुक्तावली (अद्वैत विद्यासम्बन्धिनी) दत्त सूरि के पुत्र और महामुनि उत्तम श्लोक तीर्थ के कृपा पात्र लक्ष्मण कृत ।

विष्णु भक्ति चन्द्रोदय – नृसिंहाख्य मुनि द्वारा शक १३४७ में रचित गीतार्थ बिवरण – विद्याधिराज तीर्थ के शिष्य विश्वेश्वर तीर्थ कृत ।

सत्यनाथ यति कृत अभिनवगदा यह अब दीक्षित कृत माधव मुखमर्दन के खण्डन में लिखा गया है ।

काण्द रहस्य, मिश्र शङ्कर कृत – ग्रन्थकार ने लिखा है कि जो कुछ उसके पिता भाग्य-नाथ ने उसे उपदेश दिया उसीका इसमें निरूपण किया गया है । हस्तलिखित प्रति का समय १५५१ शक है ।

न्यायचन्द्रिका केशव के पौत्र अनन्त के पुत्र माध्यानदिन केशव कृत ।

सामुद्रिकतिलक – दुर्लभराज कृत। प्राग्वाट वंश का आहिल्ल भीमदेव का मुख्य सचिव था। उसका पुत्र राजपाल और पौत्र नरसिंह था। नरसिंह का पुत्र दुर्लभराज था जिसे कुमारपाल ने महत्तम बना दिया था। इसके पुत्र जगदेव का भी उल्लेख है। कुमारपाल ने सन् ११५३ ई० से ११७२ ई० तक राज्य किया।

रसरत्नप्रदीप (या दीप) रामराज कृत। ग्रन्थकार काष्ठा के टाक वंश का था। एक वंशावली भी दी हुई है। यह हरिश्चन्द्र से आरम्भ होती है। हरिश्चन्द्र का पुत्र साधारण था। साधारण के तीन पुत्र थे लक्ष्मणसिंह, सहजपाल और मदन। लक्ष्मणसिंह के राजगद्दी पर होने का कहीं उल्लेख नहीं है। इसी कुल में रत्नपाल राजा हुआ, उसी के पुत्र का नाम रामराज है। प्रस्तुत ग्रन्थ राजा साधारण की इच्छा से निर्मित हुआ। यह ऊपर लिखे हुए साधारण से भिन्न था, सम्भवतः रामराज का बड़ा भाई हो। ग्रन्थकार ने उसके ग्रन्थों की एक पद्य बद्ध सूची दी है। इन पद्यों एवं राजलक्ष्मी के पद्यों में समानता है (आक्सफोर्ड ३२१ अ. हट्टवेयम आदि) यथा कर्कचण्ड के स्थान पर काकचण्ड, सुश्रुत के स्थान पर संसृति, शक्तगमम् के स्थान पर शक्त्यागमम्। काष्ठा का अन्तिम टाक राजा मदनपाल प्रसिद्ध है। प्रस्तुत ग्रन्थ में इस वंश के दो और राजाओं के नाम दिए हुए हैं। परन्तु इनमें से पूर्व राजा और मदनपाल के बीच कितने राजा और हुए, यह नहीं बताया गया है।

संगीतरत्नाकर टीका सुधाकर नाम्नी —सिंहभूपाल कृत।

इस ग्रन्थ के अन्त की पुष्पिका इसी संग्रहालय में रसार्णवसुधाकर नामक हस्त-लिखित ग्रन्थ के अन्त में दी हुइ पुष्पिका से 'विरचित' तक हूबहू मिलती हुई है। इसलिए स्पष्टतः रसार्णवसुधाकर और संगीतरत्नाकर टीका एक ही राजवंशी सुधाकर की रचनाएं हैं। पहले ग्रन्थ के सम्बन्ध में बर्नेल ने अपने तञ्जौर के सूचीपत्र में (जहां इसे केवल रसार्णव लिखा है) कहा है कि आरम्भिक ग्रन्थकार गत (१८ वीं) शताब्दी का तंजोर का राजा ही बताया गया है।

शृङ्गारहार—महाराजाधिराज हम्मीर कृत। ग्रन्थकर्ता कहता है कि मैंने उन महानु-भावों के विचारों का संग्रह किया है जिन्होंने गीत, वाद्य और नृत्य (गाने, बजाने और नाचने की कला) का ज्ञान प्राप्त कर ग्रन्थ रचना की है। ऐसे ग्रन्थ कर्तृ लोगों में उसने ब्रह्मा, ईश, गौरी, भरत, मतङ्ग, शार्दूलक, काश्यप, नारद, विशाखिल, दन्तिल, नन्दिकेश, रम्भा, अर्जुन, याष्टिक, रावण, दुर्गाशक्ति, अनिल और अन्य कोहल, अश्वतर, कम्बल, राजा जैत्रसिंह, रुद्रट, राजा भोज और विक्रम, सम्राट केशिदेव, सिंहण, राजा गणपति, और जय-सिंह तथा अन्य राजा लोगों का उल्लेख किया है।

सङ्गीतमकरंद–वेद या वेद बुद्ध कृत जो अनंत का पुत्र और दामोदर का पौत्र था। यह दामोदर ही संगीतदर्पणकार हो सकता है।

सङ्गीतसारकलिका–शुद्ध सुवर्णकार मोषदेव कृत। एक अत्यन्त जीर्ण प्रति–ऊपर लीलावती टीका मोषदेव कृत का वर्णन किया जा चुका है।

विदग्धमुखमण्डन टीका–बोधिका–गौरीकान्त–सार्वभौम भट्टाचार्य कृत।

विदग्धमुखमण्डन टीका-श्रवणभूषण नरहरि कृत।

४३ – दौरे से लौटने पर पोलिटिकल एजेण्ट और बीकानेर दरबार के सौजन्य से मुझे श्रीभाष्य की हस्तलिखित प्रति उधार रूप से 'बम्बई संस्कृत सिरीज' में सम्पादन करने के लिए प्राप्त हुई।

४४ – बीकानेर से मैं हनुमानगढ़ (भटनेर) गया जो इसी राज्य में है। यहां पर मेरा सहायक ऊंट पर यात्रा करते हुए दुर्घटना का शिकार हो गया और कई दिनों तक वह मुझे बिलकुल सहायता न दे सका तथा बाकी दौरे में भी पूर्णरूप से सक्रिय सहयोग न दे सका।

४५ – श्री.ए. कनिंघम ने १८७२ में लिखते हुए बताया कि उन्होंने इस गढ़ी में एक १० या १२ फीट लम्बा और ६ फीट चौड़ा कमरा हस्तलिखित ग्रन्थों से आधा भरा हुआ देखा जिनमें सबसे ऊपर रक्खी पुस्तकों में से उन्होंने एक ताड़पत्रीय हस्तलिखित पुस्तक को उठा कर देखा और इसमें रचनाकाल सं० १२०० मिला अर्थात् ईस्वी सन् ११४४ (गफ के रिकार्डस् पृ० ८२)। जब श्री बूहलर १८७४ में इस स्थान पर पुस्तक देखने के लिये आये तो उन्हें ताड़पत्रीय हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह नहीं मिला। फिर भी उन्हें ८०० हस्तलिखित ग्रन्थों का पुस्तकालय दिखलाया गया (गफ के रिकार्डस् पृ० ११६)। मैंने यहां जो कुछ देखा वह एक बड़ी सन्दूक थी जो कागज पर लिखे हस्तलिखित ग्रन्थों से भरी हुई थी। कुछ पुस्तकें कपड़े में बंधी थी, कुछ खुली हुई और अव्यवस्थित रूप में थी। यह गढ़ी बिलकुल बुरी अवस्था में है। जो लोग यहां रहते थे उन्हें रहने के लिए स्थान बनाने को किले के बाहर जगह दी हुई है और वे यहां रहने लग गये हैं। किले में जहां सन्दूक रक्खी थी वह स्थान भी बिलकुल गन्दा और भ्रष्ट सा था। इस हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रहालय का उत्तराधिकारी एक छोटा बालक है जो कि मैं समझता हूँ कि पटियाला में पढ़ रहा है।

४६ – कुछ हस्तलिखित ग्रंथ जो मैंने यहां देखे निम्नलिखित हैं :—

धर्मतत्वकलानिधि (धर्मशास्त्र) नागमल्ल पुत्र राजा पृथ्वीचन्द्र (या पृथ्वीचंद्रदेव) कृत।

इसकी प्रतिलिपी सम्वत् १५३० में की गई जब पृथ्वीचंद्र देव शासन करता था। ग्रंथकार के अपने विरुदों (उपाधियों) की एक लम्बी सूची है।

कुमारपालचरित का पञ्चम सर्ग – कृष्णर्षीयगच्छ के जयसिंहसूरि द्वारा रचित। यह वही काव्य है जिसको नयचन्द्रसूरि ने अपने हम्मीरकाव्य में अपने गुरू जयसिंहसूरि द्वारा रचित लिखा है (कीर्तने का संस्करण भूमिका पृष्ठ ६ और मूल ग्रन्थ पृ० १३२)।

शृंङ्गारदर्पण – पद्मसुन्दर कवि कृत जिसके पढ़ने से, ग्रंथकार को आशा थी कि अकबर अपनी स्त्री (मुद्रावती) पर राजी हो जायगा।

पञ्चतन्त्र की एक प्रतिलिपि जो फिरुजशाहि तुगलक के राज्यकाल में सम्वत् १४२६ में की गई थी।

सारसंग्रह (वैद्यक) द्विज याज्ञिक श्रीधर और हंसी के पुत्र गौड़ जाति के शिवदैव कृत।

लीलावतीकथावृत्ति, बल्लालसेन कृत अद्भुत सागर, बासुदेव हिन्दी (खण्ड १), किरणावली (न्याय), श्यामशकुन, कुक्कोक कृत। रतिरहस्य और वृत्तरत्नाकर पर सुल्हण कृत टीका के हस्तलिखित ग्रंथों की प्रतियां जिनका समय क्रमशः सम्वत् १४६१,१५१६,१५५७,१६१४, १६२६, १६३४ और १६४४ है।

४७ – फिर मैं जोधपुर राज्य की सीमा में नागौर स्थान पर गया। यहां मुझे कुछ भी महत्त्वपूर्ण वस्तु देखने को नहीं मिली। मुझे दो जैन ग्रंथ संग्रहालयों का पता बताया गया। प्रथम, साधारण जैन धर्म ग्रन्थों, टीकाओं और अन्यान्य पुस्तकों का एक छोटासा संग्रह है और दूसरे संग्रह के लिये मुझे बताया गया कि एक श्री पूज्यपाद के पास इसकी चाबी थी जो १०,१५ वर्ष पूर्व किसी अज्ञात स्थान को चले गये। एक ब्राह्मण के पास कुछ हस्तलिखित ग्रन्थ थे परन्तु ये बहुत साधारण कोटि के थे।

४८ – यहां से मैंने अलवर को प्रस्थान किया। अपनी ओर से पूछताछ करने पर १६०३ के नवम्बर मास में मुझे वही उत्तर मिला जो बीकानेर से मिला था। परन्तु, फिर भी १ या २ पण्डितों ने मुझे विश्वास दिलाया कि एक स्टेट संग्रहालय के अतिरिक्त अलवर में कुछ निजी व्यक्तिगत हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रह हैं और मैं निराश नहीं हुआ। मैंने राजकीय संग्रहालय देखा। यह सुव्यवस्थित रूप में था और ऐसा मालूम होता था कि इसकी भली प्रकार व्यवस्था की जाती है। मुझे यह भी पता लगा कि स्थानीय पण्डितों द्वारा जिनसे मिलने का मुझे अवसर मिला, इसका बहुत सुन्दर उपयोग किया गया है। एक पण्डित के प्रभाव से जिनसे मेरा परिचय भरतपुर में हो चुका था और एक दूसरे पण्डित की सहायता से जिसको कौन्सिल के प्रमुख सदस्य ने मुझे संग्रह घुमा फिरा कर दिखलाने की आज्ञा दी गई थी, मैं यहां के संग्रहालयों को बिना कठिनाई के देख सका। ऐसा मुझे लगा कि इन संग्रहालयों के स्वामियों को अपने इन भण्डारों को दिखलाने में किसी भी प्रकार की आपत्ति नहीं है। सम्भवतः यह उन्होंने इस उदाहरण से महसूस किया हो कि पिटरसन महोदय द्वारा राजकीय संग्रहालय की छपी सूचि तैयार किये जाने से हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज में कितना अधिक लाभप्रद कार्य हुआ है। इसमें कोई भी ऐसा आपत्तिजनक उद्देश्य होने का संदेह नहीं उठता। सचमुच अलवर में एक पण्डित ने जो पञ्जाब विश्वविद्यालय की कई संस्कृत की उपाधि परीक्षायें उत्तीर्ण था मेरे लिये बम्बई संस्कृत सीरीज में प्रकाशन व सम्पादन किये जाने वाले ग्रन्थ श्रीभाष्य की हस्तलिखित पुस्तक की प्रति उधार में दी। मैंने ६ संग्रहों की जांच की जिनके मालिक ब्राह्मण थे और सम्पूर्णतः ये संग्रह सुरक्षित एवं व्यवस्थित थे।

४६ – कुछ हस्तलिखित ग्रन्थ जो उपादेय हैं उनकी सूचि नीचे दी जाती है :—

चक्षुषोपनिषद्।

अग्निब्राह्मण (सामवेद)।

गोभिलगृह्यसूत्र की सम्वत १६४० की प्रति।

पारस्करगृह्यकारिका – रेणुकाचार्य कृत।

लाट्यायनश्रोतसूत्रभाष्य – रामकृष्ण दीक्षित कृत।

कर्म-विपाक – कृष्णदेव कृत। निर्माणकाल १४३२ संवत्सर है जब नन्दभद्र का राजा दुर्गसिंह था जिसकी रानी अम्बिका और सचिव कर्णकण्ठीरव था। ग्रन्थकार के पिता का नाम पद्मनाभ व्यास था।

नलोदय-सटीक – मिश्र प्रभाकर मैथिल कृत।

अमरूशतक सटीक – ज्ञानानन्द या श्रीलक्ष्मी रविचन्द्र कृत। (यह वही ग्रन्थ है, जो राजेन्द्रलाल के नोटिसेज में २३६३ संख्या पर अङ्कित है)।

गीतगोविन्द पर टीका मैथिल कृष्णदत्त कृत। मूल का तात्पर्य शिव के ऊपर लागू हो इस प्रकार प्रतिपादन किया गया है।

पद्यामृतसरोवर – काश्यपगोत्रोद्भव रामचन्द्र सूनु लक्ष्मण कृत।

रसकल्पद्रुम (एक संग्रह) चतुर्भुज मिश्र द्वारा संकलित। इसमें रचनाकर्ता कवियों के नाम दिये हुए हैं। यह सायस्ताखां की इच्छा से संकलित किया गया।

अमरकोष – बुधमनोहरा टीका समेत महादेव कृत जिसे स्वयम्प्रकाशतीर्थ द्वारा सन्यासी की पदवी मिली।

प्रेमसम्पुट (काव्य) विश्वनाथ चक्रवर्ति कृत, सं० १६०६, जिसमें राधा-कृष्ण विषयक रति का वर्णन है।

नव्यकाव्यप्रकाश षी (खी) मानन्द पितृनाम कान्यकुब्जतिलक रघुनन्दन इष्टकापुर निवासी कृत। उत्तर भारत में 'ख' के बदले 'ष' प्रयुक्त होता है और इसका उच्चारण प्रायः 'ख' ही किया जाता है। इस लिये खीमानन्द का दूसरा रूप षीमानन्द है, जो स्पष्टतः तत्त्व समास व्याख्या; न्यायरत्नाकर या न्याय कल्लोल का रचयिता ही है (हाल्स कण्ट्रीब्यूशन पृष्ठ ४ और १२ हस्तलिखित ग्रंथ बहुत प्राचीन है ।

विवेकमार्त्तण्ड – गोरक्षनाथ कृत।

योगाख्यान – याज्ञवल्क्य कृत इसे पुष्पिका में याज्ञवल्क्योपनिषद् नाम से कहा गया है।

प्रेमपत्तनिका – रसिकोत्तमंस कृत।

चमत्कारचिन्तामणि सटीक धर्मेश्वर मालवीय कृत।

सूर्यसिद्धान्त – चण्डेश्वरीय भाष्य समेत।

सिद्धान्तसिन्धु (ज्योषित) नित्यानन्द द्वारा शाहजहां के आदेश से बनाया गया।

चरकव्याख्या – चक्रदत्तीय ।

५० – अलवर से मैं राजगढ़ गया जो इसी राज्य में है। अलवर में ही मुझे राजगढ़ वाले उन महानुभावों के नाम मिल गये थे, जिनके पास हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह था। इन नामों को मैंने इस स्थान के हाकिम के पास पहले ही भेज दिया था और इस सम्बन्ध में उसने जो प्रबन्ध किया वह इतना पूर्ण था कि अपने उतरने के स्थान पर पहुँचते ही मैं अपना काम आरम्भ कर सका। संग्रह कोई बड़े नहीं थे और उनकी संख्या

४ थी, उनमें दो के सुरक्षित होने पर भी किसी प्रकार की क्रमिक व्यवस्था नहीं थी। निम्न-लिखित हस्तलिखित ग्रन्थ उनमें महत्वपूर्ण हैं :—

आनन्दवृन्दावनचम्पू – केशव कृत।

सारसंग्रह शम्भुदास कृत (संग्रह न कि धर्मशास्त्र का ग्रन्थ)।

काव्यकौस्तुभ – एक अपूर्ण प्रति।

वृत्तरत्नाकरटीका – श्रीकण्ठसूरि कृत।

वृत्तमाणिक्यमाला – त्रिमल्ल कृत।

अलङ्कारशेखर – माणिक्यचन्द्र कृत (१५६३ ईस्वी सन् राजाज् ऑव त्रिगर्तः इफ पृ० ३०६–७) देखिए बूह्लर की कश्मीर रिपोर्ट पृष्ठ C. २८ C. २९ और इण्डिया ऑफिस कैटेलोग ३४६–७।

छन्दःकौस्तुभ – राधादामोदर कृत टीका समेत। टीकाकार उसका शिष्य विद्याभूषण।

ज्ञानदर्पण – निम्बार्क कृत।

करणवैष्णव – शुकदेव भट्ट सुनू शङ्कर कृत।

शार्ङ्गधर टीका – आढ़मल्ल कृत।

चिकित्सासारोदधि – नन्दकिशोर मिश्र कृत।

५१-दूसरे स्थान पर जहां मैं गया वह मन्दसौर था। यहां मैंने जो संग्रह देखे वे सब जैन संग्रह थे। उनमें से एक व्यक्तिगत था जिसके केवल ध्वंसावशेष बचे थे और बाकी तीन दिगम्बर मन्दिरों के थे। दिगम्बर लोग, मुझे पहले भी मालूम था, अपनी पुस्तकों पर चमड़े की जिल्द को आपत्तिजनक समझते हैं और विशेष रूप से उन पुस्तकों को अपने मन्दिरों में नहीं रखते। इसके विपरीत श्वेताम्बर लोग इसके लिये किसी प्रकार का विरोध या आपत्ति नहीं उठाते। भले ही पुस्तकों पर चमड़े की जिल्दें हों या उन्हें चमड़े की बक्स में जो उनके मन्दिर में सुरक्षित हो रखवा दिया गया हो। यहां मुझे पता चला कि वे उन की भी आपत्ति करते है। मुझे मन्दिर में एक भी पुस्तक को नहीं छूने दिया गया क्योंकि मैं ऊनी वस्त्र पहने हुए था। एक आदमी मेरी दरी के उस ओर बैठा हुआ मुझे पुस्तकें जो मैं चाहता दिखाता जाता था। एक संग्रह में तो सभी पुस्तकें प्रायः अभी की प्रतिलिपि करवा कर रक्खी गई थी। मुझे एक संग्रह में जैनेन्द्रव्याकरण की प्रतिलिपि मिली और दूसरे में तत्त्वार्थवृत्ति (करणानुयोग) सर्वार्थसिद्धि नामक – पूज्य स्वामी कृत और एक कथाकोश मल्लिभूषण के शिष्य ब्रह्मनेमिदत्त कृत मिले। इसके आगे अन्य महत्त्वपूर्ण उल्लेख योग्य ग्रन्थ नहीं थे।

५२- किशनगढ़ राज्यान्तर्गत सलेमाबाद में मैंने सुन रक्खा था कि निम्बार्क सम्प्रदाय की धार्मिक गद्दी है और वेदान्त सम्बन्धी निम्बार्क सम्प्रदाय के ग्रन्थ वहां मिल जावेंगे। राज्याधिकारियों के द्वारा मैंने वहां के हस्तलिखित ग्रन्थों की तालिका मंगवाई। यह संग्रहालय हस्तलिखित ग्रंथ संख्या को देखते हुए बहुत छोटा है।

हस्तलिखित ग्रंथों में से कुछ ये हैं :—

कश्मीर के केशव भट्ट के कुछ ग्रंथ जैसे वैष्णवधर्ममीमांसा और भूचक्र-दिग्विजय।

वेदान्तसूत्रों पर निम्बार्कभाष्य वेदान्तकौस्तुभ श्रीनिवासाचार्य कृत।

ब्रह्मसूत्रभाष्य – भास्कराचार्य कृत।

कश्मीर के केशव भट्ट का जीवन चरित।

पुरुषोत्तमकृत वेदान्तरत्नमञ्जूषा और वेदान्तसूत्रद्रुम।

निम्बार्क प्रादुर्भाव।

हरिव्यासदेव कृत – सिद्धान्त रत्नावली।

नारदपाञ्चरात्र।

कई स्थानों से मुझे सूचियां प्राप्त हुई जिनमें अधिकांश कैप्टेन ल्यूअर्ड द्वारा भेजी गई थी; वे देवास (बड़ी शाखा) जावरा, रामपुरा, राजगढ़ (मध्यभारत), अजयगढ़, सुथालिया, झाबुआ, रतलाम, मुलतान, और भरतपुर एजेन्सी से आई थी। इन सूचियों को मांगते हुए यह अनुरोध किया गया था कि इनमें हस्तलिखित ग्रन्थ हों और वे भी संस्कृत के ही होने चाहिए। जहां ग्रन्थकारों के नाम आवें वहां अपेक्षित स्थान पर उन्हें दिखलाना चाहिए। मुश्किल से ही ऐसी कोई तालिका होगी जिसमें उल्लिखित निर्देशों का पालन किया गया हो। इन सूचियों में ज्यौतिष और वैद्यक के आधुनिक ग्रन्थ ही अधिक संख्या में लिखे गये थे।

निम्नलिखित ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं :—

देवास (बड़ी शाखा)

कुमारपालप्रबन्ध–१४६२ सम्वत् में सोमसुन्दरशिष्यजिनमण्डन द्वारा रचित।

रसिकजीवन – गदाधरभट्ट कृत।

सिकन्दरसाहित्य – रघुनाथ मिश्र कृत।

नारदपञ्चरात्र।

बाचारम्भण – नृसिंहाश्रम कृत।

ज्योतिश्चन्द्रार्करुचि – रुद्रभट्टकृत।

पञ्चपक्षी – वराहमिहिरकृत।

वैद्यभास्करोदय – धन्वन्तरिकृत।

समराङ्गणसूत्रधार – भोजदेवकृत।

एक किरणावली की प्रति – हरदत्तकृत।

रामपुर।

सुवृत्त-तिलक।

अलङ्कारभेदनिर्णय।

साहित्यसूक्ष्मसारणी – सटीक।

भाषाभूषणयुत उपमाविलास ।

५४ – अपने दौरे को पूरा करके मैं कैप्टेन ल्यूअर्ड से मिला। सेण्ट्रल इण्डिया के एजेण्ट महोदय ने मुझे लिखा था, जैसा कि मैंने अपनी पहली रिपोर्ट के ६५ वें अनुच्छेद में बताया है– कि कैप्टेन ल्यूअर्ड को आशा है कि उन्हें जैन सम्प्रदाय के लोगों और अन्य लोगों को इस खोज के काम में सहयोग देने को समझाने में पूरी सफलता मिलेगी। साथ ही श्री ल्यूअर्ड ने भी मेरी पहले वाली रिपोर्ट को पढ़ कर स्वयं लिखा था कि यह खोज, जिसके लिये मैं (श्रीधर. आर. भा.) प्रस्थान कर चुका हूँ, न्यूनाधिक रूप में उसकी बाल्यावस्था में है और वह इसे पूर्ण यौवन में विकासोन्मुख तो देखना चाहेंगे ही। इसलिये मैं यह जानना चाहता था कि इस प्रकार पूर्वप्रतिज्ञात सहायता के साथ अपना काम जारी रखने के लिये उन्होंने कितने हस्तलिखित ग्रन्थों के अधिकारी और मालिकों को मनाने में सफलता प्राप्त की। उन्होंने मुझे लिखा, कि "जैसी मैंने (ल्यूअर्ड ने) आशा कर रक्खी थी वैसी सफलता न मिलने के कारण मैं खेद प्रगट करता हूं।"

५५ – बस यहां जिस विशेष उद्देश्य के लिये मेरी सेवायें दौरा करने के हेतु लगाई गई थी वह समाप्त हुआ। मेरे अभी के दो दौरों और प्रारम्भिक खोज के दौरे के फलस्वरूप मुझे यह मानना पड़ता है कि कुछ संग्रह इतने महत्वपूर्ण हैं कि उनके सूचिपत्र बना लिये जाकर छपवा दिये जाने चाहिए क्योंकि उनका कोई भी ग्रन्थ अस्तव्यस्त व विकृत अवस्था में पड़े रहने देने जैसा नहीं है। सर्व प्रथम रींवा, जयपुर, जोधपुर, किशनगढ़, बूंदी कोटा, उदयपुर और बीकानेर के राजकीय संग्रहालय हैं।

५६ – जयपुर का संग्रहालय जिसका मैं उल्लेख कर रहा हूँ वह नहीं है जो मुझे दिखलाया गया (अपनी पूर्व रिपोर्ट के अनुच्छेद ३७ में) मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह दूसरा ही होना चाहिए। यह अधिक महत्वपूर्ण है जैसा कि मैंने अपनी पहली रिपोर्ट में पूर्वोल्लिखित अनुच्छेद में संकेत दिया है। पण्डित राधाकृष्ण ने वायसराय महोदय को दिये गये १० मई १८६८ के अपने पत्र में जो कि हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज के लिये सरकार द्वारा इस संस्था के उद्गम का कारण है लिखा था "बहुत ही अलभ्य पुस्तकें (महाराज जयपुर) के उदार पूर्वजों द्वारा राजा मानसिंह के समय से ही संग्रहीत की गई हैं। व्हिटलेस्टोक्स ने इस पत्र पर लिखे गये अपने नोट में "राजकीय पुस्तकालय की संग्रह सूचि जैसी कि जयपुर के पोलिटिकल एजेण्ट द्वारा प्राप्त की गई" का उल्लेख किया है (गफ पृ० १ और ३)। श्री पिटरसन ने अपनी १८८२–८३ सन् की रिपोर्ट पृष्ठ ४५ में लिखा है कि उन्होंने "तीन दिन ध्यान पूर्वक पुस्तकालय को देखने में बिताये। इस थोड़े से समय को देखते हुए हमारी ग्रन्थ सूचि में जोड़ने के निमित्त जल्दी जल्दी से आवश्यक ग्रन्थों की टिप्पणी मात्र लेने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं किया जा सकता था।" इस प्रकार जिस पुस्तकालय को मुझे दिखाया गया वह वर्णित पुस्तकालय नहीं हो सकता। पिटरसन ने अपनी दूसरी रिपोर्ट में यह भी लिखा कि जयपुर दरबार ने अपने पुस्तकालय की, जिसका वर्णन पूर्व रिपोर्ट में किया जा चुका, पुस्तकों का सूचि-पत्र बनाये

जाने के परामर्श को बड़ी प्रसन्नता पूर्वक मान लिया था और वह काम अब और आगे प्रगति कर चुका होगा।

५७-बीकानेर राजकीय संग्रहालय का कुछ भाग सूचि-निबद्ध कर लिया गया है। परन्तु, यह और भी अधिक उपयुक्त होगा यदि राजेन्द्रलाल के बनाए हुए सूचिपत्र में उसका पूरक भाग जोड़ दिया जाय जो ऐसी पुस्तकों का हो जिनका उस सूचि-पत्र में नामोल्लेख नहीं हुआ है।

५८-मैंने पहले भी यह बताया था कि जोधपुर में राजकीय संग्रहालय व्यवस्थित रूप में नहीं है परन्तु अब जोधपुर दरबार ने निश्चय कर लिया है कि इसे सुव्यवस्थित कर लिया जाय और सूचि-पत्र बनवा दिया जाय। महकमा खास के सीनियर मैम्बर (प्रधान सदस्य) ने मेरे विचार इस विषय पर मांगे और मैंने उन्हें उनके पास भेज भी दिये हैं।

५९-फिर, कुछ जैन भण्डार हैं जो प्रकाश में लाने योग्य हैं। (१) जैसलमेर का बड़ा भण्डार, कम से कम एक बीकानेर में व एक जोधपुर में है। बीकानेर का एक बड़ा भण्डार जिसके विषय में मैं कह रहा हूं, अभी एक जैन सद्गृहस्थ के अधिकार में है और इसको दूसरे आदमी के अधिकार में न जाने देने के लिये उसे न्यायालय में बहुत अधिक लड़ना पड़ा। क्योंकि उसे विश्वास था कि ऐसा करने से वह संग्रह दुरव्यवस्था और विकृति को प्राप्त हो जायगा। उसे सूचित कर दिया गया है और वह इसकी सूचि बना देने के परामर्श को मानने के लिए तैयार है। जैसलमेर के बड़े भण्डार के सम्बन्ध में मुझे आशा है कि ट्रस्टी महानुभावों के मानने पर शीघ्र ही उसका सूचि-पत्र बनाने दिया जा सकेगा। परन्तु, उन लोगों को मना कर प्रतिदिन सूचिपत्र के कार्य को करते रहने देने का प्रश्न सरलता से ही हल होजाय और कोई बाधा न खड़ी हो, यह सरल काम नहीं होगा। दीवान महोदय और ट्रस्टी महानुभावों की, जिनको मैंने उनके उत्तरदायित्व के बहुत ही उपयुक्त पाया, सहायता से, बहुत सम्भव है सूचि तैयार हो सकती है। अन्त में यह बताना है कि कोटा के मन्दिरों में ब्राह्मण ग्रन्थों के संग्रहालय का भी सूचि पत्र बन जाना चाहिए। सूचिपत्र का आकार मैंने अपनी पूर्व रिपोर्ट के ६६ वें अनुच्छेद में बता ही दिया है।

६०-जैन संग्रहालयों के सम्बन्ध में एक प्रश्न विचारणीय है। वर्तमान समय में जैन समाज में अत्यधिक जागरूक प्रवृत्तियां काम कर रही हैं और वे लोग जहां सम्भव हो उन उन स्थानों का सूचिपत्र बनाने दे रहे हैं। यदि जैन समाज ऐसे सूचिपत्र बनवा कर उन्हें छपवादें तो सरकार के लिए ऐसा करना व्यर्थ ही होगा। इसलिये मैंने 'मन्त्री महोदय' श्वेताम्बर जैन कान्फरेन्स से सूचि-पत्र बनाने के विषय में कान्फरेन्स के विचारों के सम्बन्ध में पूछताछ की। मैने उनसे पूछा (१) क्या यह सच है, जैसा मुझे बताया गया है कि सूचि-पत्र बनाने का उद्देश्य केवल यही मालूम करना है कि तीन विभिन्न स्थानों के संग्रहालयों में कौन से जैन ग्रन्थ मिलते हैं और किस स्थान पर हैं, एवं क्या उनका

संग्रह पूर्ण बनाना है ? (२) क्या जैन कान्फरेन्स का विचार सभी स्थानों पर स्थित सारे जैनपुस्तक भण्डारों की सूचि बनाने का है अथवा केवल पाटन और जैसलमेर के भण्डारों की सूची बनाने का ? (३) क्या सभी अथवा कुछ सूचियां प्रकाशित की जावेंगी ? (४) क्या इन सूचियों में भण्डार स्थित ब्राह्मणग्रन्थों का भी उल्लेख रहेगा ? और (५) क्या इन प्रकाशित होने वाली अथवा हस्तलिखित प्रति के रूप में रक्खी जाने वाली सूचियों में केवल ग्रन्थनाम, कर्तृनाम, पत्रसंख्या, पंक्तियां और अक्षर और समय का ही उल्लेख होगा अथवा प्रतियों में से ऐसे ऐसे स्थल भी उद्धृत किए जावेंगे जैसे कि शान्तिनाथ भण्डार की सूचि में पिटरसन ने दिए हैं। उनके उत्तर का कुछ अंश यहां उद्धृत किया जाता है :—"हमें ज्ञात हुआ है कि हमारे बहुत से बहुमूल्य प्राचीन ग्रन्थ पुरातन समय में ऐसे भण्डारों में छुपा दिए गए थे और इन भण्डारों के संरक्षक अथवा अन्य व्यक्ति, जिनका इन पर अधिकार है, इनको खोलने तथा जीर्ण पुस्तकों का उद्धार करने के लिए तत्पर नहीं हैं। हमने जैसलमेर और पाटण के भण्डारों की सूची बनाली है और अब हमारे पण्डित लोग अन्य भण्डारों की सूचियाँ बनाने में लगे हुए हैं। कतिपय भण्डारों की सूचियां तैयार हो जाने पर हमारा विचार है कि उनकी तुलना करके यह देखा जावे कि किन किन पुस्तकों की मरम्मत पर तुरन्त ध्यान दिया जाना चाहिए। जो ग्रन्थ सम्प्रति प्रचार में नहीं हैं उनकी प्रतिलिपियां करा लेने का भी हमारा विचार है जिससे कि भविष्य में भण्डारों को बार बार में खोलने की आवश्यकता न पड़े। एक केन्द्रीय पुस्तकालय या ऐसी ही कोई संस्था कायम करने की बात भी हमारे ध्यान में है। यह योजना अभी तक पूर्णरूप में विकसित नहीं हुई है परन्तु हमें आशा है कि समय आने पर यह अवश्य पूरी होगी। सूचियों को मुद्रित कराने के विषय में तो जब सभी सूचियां तैयार हो जावेंगी तभी निर्णय किया जा सकेगा। अभी तो मैं इतना ही कह सकता हूं कि सम्भवतः हम इन सूचियों को छपावेंगेही।"

इससे यह मालूम होता है कि कान्फरेन्स का उद्देश्य मुख्यतया साहित्यिक दृष्टिकोणवाला नहीं है परन्तु उसका सम्बन्ध केवल अप्रचलित जैन साहित्य से है जिसमें आध्यात्मिक और लौकिक साहित्य सम्मिलित है। तदनुसार जो सूचियां जैसलमेर के बड़े भंडार में मैंने देखी, जो कान्फरेन्स की ओर से बनाई गई थी, उसमें प्रत्येक हस्तलिखित ग्रन्थ के सम्बन्ध में यह विवरण था कि उस ग्रन्थ के पुनरुद्धार की आवश्यकता है या नहीं और यदि है तो तत्काल या अन्यथा। साथ ही ब्राह्मण ग्रन्थों के सम्बन्ध में केवल नाममात्र का उल्लेख था। 'अन्यदर्शनीय' लिखने के अतिरिक्त और कोई सूचना उनके सम्बन्ध की थी ही नहीं। सूचि में कोई सारोद्धार नहीं था। ऐसी परिस्थितियों में जैन संग्रहों के सूचि-पत्र भी गवर्नमेण्ट की ओर से बनवाने और छपवाने होंगे।

६१—कुछ और भी बातें हैं जिनपर मुझे अपना विवरण देना है। उनका सम्बन्ध मेरी पहली यात्रा और उससे सम्बन्धित रिपोर्ट से है। इन्दौर में मैंने उस समय श्रीमन्त सरदार किबे महोदय के पास एक पौराणिक की प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकें देखीं थी।

कुछ दिनों बाद ही वह पौराणिक प्लेग का शिकार हो गया। परिणामतः वे सभी ग्रन्थ सरदार महोदय के हो गये और उन्होंने कुछ ही समय पूर्व इन्हें बम्बई की एशियाटिक सोसोइटी को दे दिया।

६२– उस रिपोर्ट के अनुच्छेद १३वें में मैंने इन्दौर के ३ या ४ शास्त्रियों के अधिकार में हस्तलिखित ग्रन्थों के होने की सूचना लिखी थी। ये लोग प्लेग से मर गये थे। अब वे ग्रन्थ गुप्त रूप से उन लोगों के हाथ बेचे जा रहे हैं जिनको उन पुस्तकों की सुरक्षा में कोई भी रुचि नहीं है। मैंने दीवान साहब को यह अनुरोध करते हुए लिखा था कि वे इस विनाश को रोकने के लिये उपयुक्त दिशा में कार्य करें। मुझे पता नहीं कि राज्य के और और कार्यों में व्यस्त दीवान साहब ने मेरे परामर्श पर कोई ध्यान दिया या नहीं।

६३– मैंने शूलपाणि की याज्ञवल्क्य पर टीका की एक प्रति इन्दौर में और कल्याण भट्ट कृत टीका सहित नारदस्मृति की एक प्रति बूंदी में देखी थी। व्यूर्जबर्ग के प्रोफेसर श्री जोली ने, जिनके अध्ययन का एक प्रधान विषय 'धर्म' रहा है, इनको देखा और मुझे लिखा कि इन दोनों की प्रतिलिपि करवा कर उनके पास भेजी जाय। साथ में उन्होंने यह भी लिखा की मेरी यात्राओं का परिणाम बहुत महत्वपूर्ण है। आगे फिर लिखते हुए उन्होंने मुझे बताया है कि याज्ञवल्क्य की टीकाओं पर लिखे जाने वाले एक निबन्ध में शूलपाणि की हस्तलिखित पुस्तक की अन्वेषणा के महत्व पर वे प्रकाश डालेंगे। इस हस्तलिखित पुस्तक के स्वामी और बूंदी दरबार के सौजन्य से मैंने इन दोनों पुस्तकों को उदरत में ले लिया और उन प्रतियों को इन प्रोफेसर के पास भिजवा दिया है। मुझे पता है कि जब मैं पुस्तक मांगने गया तो शूलपाणि टीका के मालिक को इस बात का स्वप्न में भी पता नहीं था कि वह पुस्तक उनके पास है।

६४– इसी प्रकार मेरी यह रिपोर्ट एक दूसरे विद्वान् के लिये भी अतीव उपयोगी सिद्ध हुई है। जब कभी मैंने बौधायन श्रौत-सूत्र, जिसकी पूर्ण प्रति अभी तक नहीं मिली है के भागों के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट में लिखा, मुझे यूट्रेक्ट के डाक्टर कैलेण्ड का पूरा २ ध्यान रहता था जो इस सूत्र के सम्पादन कार्य में लगे हुए थे। उन्होंने उन विशेष विशेष स्थानों को नोट कर मेरे पास भेजा जिनके न होने से उनका काम अधूरा था। साथ ही उनकी मूलप्रतियों को उधार में भेजने के लिये अथवा कम से कम उनकी प्रतिलिपि करवा कर भिजवाने के लिये भी मुझे उन्होंने लिखा था। उन्होंने लिखा कि "मैं ही नहीं बल्कि सारा वैज्ञानिक संसार जो संस्कृत के अध्ययन में पूरी दिलचस्पी रखता है, आपके इस उपकार के लिये बहुत अधिक कृतज्ञता प्रकट करेगा।" सौभाग्य से धार, ग्वालियर, और उज्जैन में कुछ संग्रहालयों के स्वामी ऐसे उदार मना थे जिन्होंने मुझे पुस्तकें उधार दे दी और मैं उन मूल ग्रन्थों को इण्डिया आफिस के मार्फत उन प्रोफेसर महोदय के पास भेज सका। वे यथा समय वापिस भी लौटा दी गई हैं। डा० कैलेण्ड कहते हैं "कुछ हस्तलिखित प्रतियां तो बहुत ही महत्वपूर्ण थी। कुछ अंश अब भी बच गए हैं, जिनके लिये उन्हें अतिरिक्त सामग्री की आवश्यकता पड़ेगी। ये ग्वालियर के तीनों आदमी जिनके

पास इन सूत्रों की १ या अधिक प्रतियां थीं, मेरे उस स्थान पर जाने के बाद शीघ्र ही मर गये । मैंने उनसे इन्हें लेने की बहुत चेष्टा की परन्तु कोई फल न मिला ।

६५–ग्वालियर के राजकीय संग्रहालय में स्थित 'विक्रम विलास' की हस्तलिखित प्रति को, जिसका मैंने अपनी पूर्व रिपोर्ट में विवरण दिया है, अन्त में मैंने दरबार साहब और रेजिडेण्ट महोदय के सौजन्य से प्राप्त कर ही लिया । मैंने इसकी प्रशस्तियों का उपयोग बम्बई एशियाटिक सोसाइटी की शताब्दी के अवसर पर पढ़े गये अपने निबन्ध में भली प्रकार किया ।

६६–मेरी गत रिपोर्ट लिखते समय मुझे किशनगढ़ के जवानसिंह संग्रहालय की सूचि मिली है जिसे मैंने अनुच्छेद ४७ में लिखा है । इसमें कोई महत्वपूर्ण सामग्री नहीं है ।

६७– अनुच्छेद ५० वें में मैंने इस बात का जिक्र किया है कि एक हस्तलिखित ग्रन्थ मुझे शाहपुरा (राजपूताना) में यजुर्वेद पर रावणकृत भाष्य के रूप में दिखाया गया जो कि वाजसनेयीसंहिता पर महीधर का भाष्य निकला । इसके बाद मैंने रींवां से एक मित्र द्वारा प्राप्त सूचि में इसके उल्लेख को इस प्रकार देखा 'वेदभाष्य–रावण महीधर कृत' यह इस बात को बताता है कि कुछ लोगों मे यजुर्वेद पर महीधर के भाष्य को ही रावण का भाष्य समझा है ।

६८–इस कार्य के लिये अपने सम्पर्क में आने वाले पोलिटिकल अफसरों को मैं बारम्बार धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने समान रूप से सौजन्य प्रदर्शित किया और साथ में बीकानेर महाराज को भी हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मेरे कार्य में सर्वाधिक मनोयोग दिया और दिलचस्पी ली । राजपूताना के माननीय ए० जी० जी० और विभिन्न दरबारों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करता हूं, जिन्होंने कस्टम आफिसरों (राहदारी व जकात के अधिकारियों) द्वारा किये जाने वाले कष्टप्रद निरीक्षणों से मुझे छुटकारा दिलवाया ।

श्रीधर रा० भाण्डारकर

परिशिष्ट - १

जैसलमेर के उत्कीर्ण लेख

संख्या - १

चिन्तामणि पार्श्वनाथ के मन्दिर से उध्दृत

यह उत्कीर्ण लेख मन्दिर के प्रतिष्ठादि कार्यों के सम्बन्ध में हुए महोत्सवों की प्रशस्ति रूप में तैयार किया गया है। इसका अधिकांश भाग गद्य मय है। मन्दिर का निर्माण कराने वाले उकेशवंशीय और रङ्कान्वय श्रेष्ठि लोगों (वैश्यों) की एक लम्बी वंशावली दी हुई है। उनके कुछ पूर्वजों की प्रसिद्ध प्रसिद्ध यात्राओं का वर्णन तिथि समेत दिया गया है। फिर एक खरतर पट्टावली जिनकुशल से जिनराज तक की दी हुई है और उसमें जिनवर्द्धन को उस समय पट्ट पर आसीन बताया गया है। जिनवर्द्धन ने ही श्रेष्ठि लोगों द्वारा बनवाए हुए मन्दिर और उसमें स्थापित मूर्तियों की प्रतिष्ठा सम्वत् १४७३ में लक्ष्मणराज के राज्य-काल में करवाई। प्रशस्ति की रचना जयसागर गणि ने की।

संख्या - २

उसी मन्दिर से

यह सम्पूर्ण पद्य बद्ध है। प्रथम दो श्लोक पार्श्वनाथ की प्रशंसा में और १ पद्य जैसलमेर की प्रशंसा में लिखा गया है। फिर राजा लक्ष्मण की वंशावली दी गई है। इस वंश के राजा लोग यदुकुल से सम्बन्धित बताये गये हैं। वंशावली जैत्रसिंह से आरम्भ होती है। जैत्रसिंह के पुत्र मूलदेव (या मूलराज) और रत्नसिंह ने उसी प्रकार पृथ्वी की रक्षा की जैसे प्राचीन काल में राम और लक्ष्मण ने की थी। रत्नसिंह का पुत्र घटसिंह था जिसने सिंहरूप में म्लेच्छ रूपी हाथियों से बलात् वप्रदरी को छीन लिया। मूलराज का पुत्र देवराज था, देवराज का पुत्र केहरी और केहरी के लक्ष्मण हुए।

अन्तिम व्यक्ति लक्ष्मण की प्रशंसा में ६ श्लोक लिखे गये हैं, जिनमें यह बताया गया है कि वह सूरीश्वर सागरचन्द्र के पादपद्मों का पूजक था। सम्पूर्ण चान्द्रकुल की पट्टावली जिनकुशल से जिनराज तक दी हुई है। जिनराज के आदेश और शिक्षा से मन्दिर का निर्माण कार्य लक्ष्मणसेन के राज्यकाल में खरतर संघ द्वारा आरम्भ किया गया और (नवेषुवार्धेन्दु) १४५९ संवत् में सागरचन्द्र ने उसकी आज्ञा से गर्भगृह में मूर्ति स्थापित की। जिनवर्द्धन के निर्देशानुसार मन्दिर का निर्माण-कार्य सम्वत् १४७३ में पूरा कर दिया गया। तब ऐसे नगर को जिसमें ऐसा सुन्दर मन्दिर बनवाने का सौभाग्य मिला, वह राजा जिसके राज्य में यह बना और वह संघ जिसने इसका निर्माण करवाया और आगे भविष्य में जो लोग इसका दर्शन करने वाले होंगे, उन सबको अपने २ सौभाग्य के लिये बधाई दी गई है। जिनमन्दिर 'लक्ष्मणविहार' कहलाता है। प्रशस्ति का बनाने वाला साधु कीर्तिराय है।

संख्या - ३

उसी मन्दिर से उध्दृत

मन्दिर में वयरसिंह के राजत्वकाल में सम्वत् १४६३ में पार्श्वनाथ की मूर्तिस्थापना का वर्णन है ।

संख्या - ४

लक्ष्मीनारायण मन्दिर से

इसमें जैसलमेरु को वणिग् विश् (व्यापारी लोगों का) एक अजेय नगर और यादव-कुल के राजाओं द्वारा शासित बताया गया है । फिर जैत्रसिंह से लक्ष्मण तक एक वंशावली दी गई है जिसमें उत्कीर्ण लेख संख्या २ में उद्धृत रत्नसिंह और घटसिंह को छोड़ दिया गया है । लक्ष्मण के पुत्र वैरीसिंह ने मन्दिर की प्रतिष्ठा विक्रम सं० १४६४ (अतीतः बीता हुआ) और भाटिक संवत् ८१३ (प्रवर्तमान) में करवाई । तब गद्य में ऊपर दी गई वंशावली ही वैसी की वैसी जैतसिंह से लिखी गई है और यह बताया गया है कि पञ्चायतन प्रासाद वैरीसिंह द्वारा सब इच्छाओं की पूर्त्यर्थ और लक्ष्मीनारायण प्रीत्यर्थ प्रतिष्ठित किया गया ।

संख्या - ५

सम्भवनाथ मन्दिर से

(मन्दिर जिसके नीचे बड़ा भण्डार है)

जैसलमेर की प्रशंसा इस रूप में की गई है कि शक्तिशाली म्लेच्छ राजाओं ने भी यह स्वीकार किया कि हजारों की संख्या में भी शत्रुओं द्वारा इसे अधिकार में करना कठिन है । फिर यदु राजाओं के कुल की प्रशंसा की गई है । इस वंश की वंशावली गद्य में है, जो जैतसिंह से आरम्भ होती है तथा रावल श्री दूदा को रत्नसिंह और घटसिंह के बीच में रख दिया गया है । केहरी को इसमें केसरी बतलाया है । वंशावली वैरीसिंह के साथ ही समाप्त हो जाती है । फिर चन्द्रकुल (जैनों का एक सम्प्रदाय) के खरतर विधि पक्ष की पट्टावली आरम्भ होती है जिसका आरम्भ वर्द्धमान से है । इसमें कुछ साहित्यिक और अन्य बातें भी हैं जिनका सम्बन्ध कई नामों से है । जिनमें बहुतसी प्रसिद्ध हैं । निम्नलिखित ध्यान देने योग्य हैं -

जिनवल्लभ के उत्तराधिकारी जिनदत्त को अम्बिकादेवी द्वारा युग प्रधान की उपाधि दी गई थी । इसका उल्लेख जिनदत्तकृत सन्दोहदोलावली पर जिनसागर रचित टीका में है ।

पट्टावली के अन्त में जिनभद्र का नाम आता है । जिनवर्द्धन को छोड़ दिया गया है । इसका कारण स्वभावतः वही है जो कि क्लात कृत ऑनोमैस्टिकन (पृष्ठ ३४) में दिया गया है । जिनभद्र के शील, विद्या और उपदेशों की प्रशंसा की गई है । उसकी सच्छिक्षा से विहार (मन्दिर) बनवाये गये, कई स्थानों में मूर्तियां रक्खी गई और अणहिल पाटण

जैसे स्थानों में विद्या के रत्नों के खजाने (पुस्तकालय) विधिपक्ष श्राद्ध सङ्घ द्वारा बनवाये गये। इस उत्कीर्ण लेख के अनुसार वैरीसिंह, अम्बकदास और क्षितीन्द्र जैसे राजा लोग उसके चरणों के पूजक थे।

फिर मन्दिर-निर्माताओं की वंशावली दी गई है जो चोपड़ा गोत्र और उकेशवंश के थे। सम्वत् १४८६ में उन्होंने शत्रुञ्जय और रैवत की तीर्थयात्रा की तथा १४६० में पञ्च-म्युद्यापन किया। जिनभद्र के उपदेश से उन्होंने वैरीसिंह के राजत्वकाल में १४६४ सम्वत् में इस मन्दिर का निर्माण करवाया। प्रतिष्ठा सम्बन्धी महोत्सव सं० १४६७ में हुआ जब जिनभद्र ने सम्भवनाथ की ३०० मूर्तियों तथा अन्य मूर्तियों की स्थापना की, उनमें सम्भव-नाथ मूल नायक थे। इन महोत्सव विधियों में वैरीसिंह ने भाग लिया। तदनन्तर खरतर विधिपक्ष के किसी जिनकुशल मुनीन्द्र के लिये तीनों लोकों में विजयप्राप्ति की अभिलाषा प्रगट की गई है। प्रशस्ति की रचना वाचक जयसागर के शिष्य वाचनाचार्य सोमकुञ्जर द्वारा की गई है।

संख्या – ६

उसी मन्दिर से

इस पट्टावली में मेरे द्वारा सरकार के लिये १८८३ – ८४ में खरीदे गये हस्तलिखित ग्रन्थों (जैनश्वेताम्बर सम्प्रदाय सम्बन्धी) की रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है जैसा कि प्रव-चन परीक्षा में बताया गया है (डा० भाण्डारकर की रिपोर्ट १८८३ - ८४ पृष्ठ १५२)। यह भी जिनभद्र तक है। इसमें जिनवर्द्धन को छोड़ दिया गया है। इस उत्कीर्ण लेख में बताया गया है कि वाचनाचार्य रत्नमूर्तिगणि के उपदेश से एक तपःपट्टिका सम्वत् १५६५ में स्थापित की गई, जब जिनभद्र पट्ट पर आसीन थे और चाचिगदेव सिंहासनासीन थे।

संख्या – ७

शान्तिनाथ मन्दिर से

यह उत्कीर्ण लेख अधिकतर गुजराती गद्य में है। अन्त में एक वाक्य तथा २ श्लोक संस्कृत में हैं आरम्भ में भी एक संस्कृत श्लोक है। उत्कीर्ण लेख में तीर्थयात्राओं और मन्दिरों के निर्माणकार्य का वर्णन है। इसमें निम्नलिखित वंशावली है-रावल चाचिगदेव, रावल देवकरण, रावल जयतसिंह। अन्तिम व्यक्ति सं० १५८३ में गद्दी पर था और लूण-करण उसका उत्तराधिकारी था। देवकरण के सम्बन्ध में ऐसा लिखा हैं कि १५३६ सम्वत् में वह शासन कर रहा था, जिस वर्ष इस मन्दिर की प्रतिष्ठा की गई। जयतसिंह का भी १५८१ सम्वत् में गद्दी पर होने का उल्लेख किया गया है।

संख्या – ८

महादेव मन्दिर से

इसमें महारावल हरिजन के पुत्र रावल भीमसिंह की महिषी द्वारा १६७३ (उन्नीत)

सम्वत् वैक्रम, शक १५३८ और भाटिक ६६३ प्रवर्तमान सम्वत् में मन्दिर निर्मित किया गया, इसका विवरण है।

संख्या - ९

गिरिधारीजी के मन्दिर से

इसमें महारावल मूलराजजी द्वारा पुरुषोत्तम भगवान् का मन्दिर सम्वत् १८५२ या शक १७१७ में बनवाया गया, यह उल्लेख है। उत्कीर्ण लेख अशतः संस्कृत में है और अंशतः हिन्दी की एक बोली में।

संख्या - १०

हनुमान् के मन्दिर से

इसमें 'महारावल' मूलराजजी द्वारा युधिष्ठिर सं० ४८९८, सम्वत् १८५४ या शक १७१९ में ६ मन्दिरों का निर्माण करवाने का उल्लेख है।

उपर्युक्त शिलालेख और रिपोर्ट में दी हुई पट्टावली से जैसलमेर के महारावलों और उनके समय के सम्बन्ध में कुछ सूचनाएं और कुछ थोड़ीसी निश्चित ।तथियों का पता चलता है जो सूची में दिखाये गये हैं:-

१ - जैतसिंह या जैत्रसिंह।
२ - मूलराज, १ का पुत्र।
३ - रत्नसिंह, १ का पुत्र (डफ की क्रोनोलोजी पृष्ठ २६०-१ में दी गई सूचि में नहीं है)।
४ - दूदा (केवल संख्या ५ वाली में)।
५ - घटसिंह, ३ का पुत्र।
६ - देवराज, २ का पुत्र।
७ - केसरी या केहरी, ६ का पुत्र।
८ - लक्ष्मण, ७ का पुत्र सम्वत् १४५६,१४७३।
९ - वैरीसिंह या वयरसिंह, ८ का पुत्र।
(सं० ४) सम्वत् १४९३,१४९४ (भाटिक सं० ८१३), १४९७।
१० - चाचिग सं० १५०५।
११ - देवकरण सं० १५३६।
१२ - जयतसिंह सं० १५८१,१५८३।
१३ - लूणकरण सम्भवतः १२ का पुत्र।
१४ - मालदेव (बलदेव, डफकी क्रोनोलोजी में) का द्वितीय पुत्र (टॉड), सं० १६१२।
१५ - हरिराज।
१६ - भीमसिंह १५ का पुत्र सम्वत् विक्रम १६७३ या भाटिक ६९३।

❀ ❀ ❀ ❀

२५ - महारावल - मूलराज सं० १८५२, १८५४

जैसलमेर के रावल और महारावल भाटी जाति के थे और यह पता चला कि वे कभी कभी एक सम्वत् चलाते थे जिसे वे 'भाटिक' सम्वत् कहते जो विक्रमी संवत् काल से ६८०-१ वर्षों पीछे का है।

ऊपर वाले उत्कीर्ण लेखों में से केवल ३ में अर्थात् संख्या (२),(४) और (५) में वंशावली जैत्रसिंह से आरम्भ होती है। संख्या (४) में फिर रत्नसिंह और घटसिंह के नाम एक साथ छोड़ दिये गये हैं; इसका सम्भवतः यह कारण हुआ हो कि वे मूलराज की सीधी वंशपरम्परा में नहीं थे। रत्नसिंह उसका छोटा भाई था और घटसिंह उसका भतीजा।

प्रिन्सेप और डफ कृत क्रोनोलोजी की पुस्तकों के अन्त में दी गई जैसलमेर के महारावलों की तालिका में रत्नसिंह का नाम छोड़ दिया गया है। परन्तु सं० (५) स्पष्ट बतलाती है कि रत्नसिंह राजा था और संख्या (२) यह कहती है कि मूलराज और रत्नसिंह ने जिस प्रकार प्राचीन काल में राम और लक्ष्मण ने पृथ्वी का उपभोग किया वैसे ही किया। कर्नल टॉड के विवरण के अनुसार यद्यपि गोरी आलाउद्दीन की सेना द्वारा डाले गये घेरे में मूलराज और रत्नसिंह दोनों १२९५ ईस्वी सन् में काम आये*। फिर भी यह बहुत सम्भव है कि रत्नसिंह का राज्यतिलक न हुआ हो। वह एक सम्मिलित रूप का राजा माना गया हो जैसा कि उत्कीर्ण लेख सं० (२) में राम और लक्ष्मण के साथ उनकी तुलना की गई है। इन तीन उत्कीर्ण लेखों में जो ऊपर बताये गये हैं दूदा या दूदू केवल संख्या (५) में आया है, उसका नाम प्रिन्सेप की सूची में अन्त में दिया गया है न कि डफ की सूची के अन्त में। दूदू इस वंश का सीधा अधिकारी नहीं था बल्कि उसे कुछ वर्ष बाद चुन लिया गया जब कि मूलराज और रत्नसिंह का पतन हो चुका था।

टॉड के विवरण से हमें पता चलता है कि घेरे के समय जिसमें देवराज का पिता काम आया था देवराज बुखार में ही परलोक सिधार गया। इसलिये उसका नाम न तो डफ की सूचि में और न प्रिन्सेप की सूचि में आता है। उपर्युक्त उत्कीर्ण लेखों में केवल पांचवी संख्या वाले लेख में उसका राजा होने का उल्लेख आया है।

दूसरे दो केवल उसे मूलराज का पुत्र बताते हैं। ये दोनों लेख उन लोगों का समर्थन करते हैं जिनकी यह राय है कि ये दोनों सिंहासन पर बैठे थे, इसमें कदापि किसी बात का सन्देह नहीं है।

शुद्धि पत्र और पूरक टिप्पणियाँ

पृ० ६, १. ६. 'आक्सफोर्ड' के स्थान पर 'इण्डिया आफिस' होना चाहिए।

जावालीपुर जिससे उदयसिंह का सम्बन्ध है, जबलपुर से समता रखता है, ऐसा माना गया है (बॉम्बे गजेटियर इन्डेक्स पृ० २०३) परन्तु यह धोलका से बहुत दूर मालूम होता है और मैं इसको जालोर के साथ मिलाना चाहता हूं तथा इस उदयसिंह को मैं

* राजस्थान, भाग २, पृ० २२८।

श्रीमाल या भीनमाल से सम्बन्धित मानता हूँ जो शिलालेख VII-IX-VI और VIII बोम्बे गेजेटियर परिशिष्ट [पृष्ठ ४७५] में उल्लिखित है। श्रीजावल और श्रीजावलीपुर सं. (५) और सं. (१४) में उसी सीरीज के अन्दर प्रथम अभिज्ञान के ही पक्ष को प्रबल करते मालूम होते हैं। राजा का नाम, उसके पिता का नाम (समरसिंह) वंश का नाम (चाहुमान : उत्कीर्ण लेख १३ में) और समय (सम्वत्) १२६२,१२५४, १३०५ (उत्कीर्ण लेखों में) और जावलीपुर का जालोर के साथ अभिज्ञान यदि ठीक हो तो द्वितीय अभिज्ञान का समर्थन हो जाता है।

पृष्ठ-४४ नीचे से १-२१ वीं पंक्ति "सरयू नदी के इस ओर" के स्थान में "सरय्ववार देश में" होना चाहिए और अनुच्छेद (पैराग्राफ) के अन्त में पृष्ठ ४५ पर निम्नलिखित शब्द जोड़े जाने चाहिए "उदयसिंह रूपनारायणीय का कर्त्ता (पृष्ठ ६) । जयमाधव मानसोल्लास का रचयिता भी इसी वंश का मालूम होता है जैसा कि इस ग्रन्थ में लिखा है (इण्डिया आफिस कैटलोग; पृष्ठ ५५० - १ और डा. भण्डारकर की रिपोर्ट १८८१-८२ पृष्ठ २--अनुच्छेद ५) ।"

गोविन्द मानसोल्लास (पृष्ठ ५६)

(स्मृति) रत्नाकर : हरसिंह के सचिव चण्डेश्वर रचित। यह स्मृति रत्नाकर सात भागों में विभक्त है। इसमें और उसी ग्रन्थकार द्वारा रचित कृत्यचिन्तामणि में हरसिंह और चण्डेश्वर के कई विवरण दिये गये हैं (इण्डिया आफिस केटेलोग पृष्ठ ४१०-४ और ५११-२ और राजेन्द्रलाल के नोटिसेज संख्या १८४२,१६२१,२०३६,२०६६,२३८४, और २३६८) हरसिंह के लिये मिथिलाधिप, कर्णाटवंशोद्भव, कर्णाटभूमिपति, कर्णाटाधिप जैसी पदवी लगाई गई है। देवादित्य उसका सचिव था और उसे तीरभुक्ति विषय (तिरहुत) का रहने वाला बतलाया गया है। देवादित्य का पुत्र महासान्धिविग्रहिक ठक्कुर वीरेश्वर का पुत्र महासान्धिविग्रहिक ठक्कुर चण्डेश्वर था। चण्डेश्वर को मिथिलाधिप मंत्रीन्द्र नेपालाखिलभूमिपालजयी, नेपालाखिल भूमिपालपरिखा कहा गया है। शक १२३६ (१३१४ ई० सन्) जो ग्रन्थ में लिखा गया है वह कहीं भी रत्नाकर ग्रन्थ के या उसके किसी भी भाग के निर्माण का काल नहीं लिखा गया है परन्तु, वह चण्डेश्वर द्वारा तुलादान विधि-सम्पादन करने का समय है इस विवरण से यह विदित होगा कि गोविन्दमानसोल्लास का कर्ता चण्डेश्वर का भतीजा और वीरेश्वर के छोटे भाई गणेश्वर का पुत्र था।

हरिसिंह के पिता के नाम के सम्बन्ध में इतिहासकारों में एक राय नहीं हैं। कई विद्वान् महानुभावों ने इस नाम को कई तरह से बताया है जैसे शक्तसिंह, कर्मसिंह, भूपालसिंह। श्री हॉल इसे रत्नाकर ग्रन्थ से उद्धृत कर भवेश बतलाते हैं। परन्तु यह नाम हस्तलिखित ग्रन्थ की प्रतियों के विभिन्न भागों से उद्धृत अंशों में कहीं नहीं आया है। यदि यह सन्मिश्र मिशरू द्वारा लिखित हरसिंह हो तो उसके द्वारा दिया गया उसके पिता का नाम भी भवेश है परन्तु, हरसिंह के उत्तराधिकारियों के नाम जो उसने दिये हैं वे सिल्वन लेवी द्वारा दिये गये नामों से मेल नहीं खाते (बी. नेपाल पृष्ठ २२६) फिर भी उसके द्वारा

उल्लिखित हरसिंह मिथला के पाञ्जा से संग्रहीत ठाकुर वंश की वंशावली की अनुक्रमणिका में आये हुए भवेश्वर या भवसिंह का पुत्र हो सकता है जो इण्डि० एण्टी० भाग १५ पृष्ठ १६६ में है। उस अनुक्रमणिका के अनुसार उसके पुत्रों में से एक का नाम नरसिंह या दर्प नारायण था और उसकी द्वितीय स्त्री से उत्पन्न पुत्रों में एक का नाम चन्द्रसिंह था। विद्यापति ने इस चन्द्रसिंह का ही अपनी दुर्गाभक्तितरङ्गिणी में उल्लेख किया है । नरसिंह जिसकी रानी धीरमती के (या विवादचन्द्र के अनुसार धीराके) अनुरोध से विद्यापति ने अपना "दानवाक्यावलीग्रन्थ" लिखा था वह इस चन्द्रसिंह का पिता होना चाहिए (देखिए इण्डिया कैटलोग पृष्ठ ८७४-६ और राजेन्द्रलाल के नोटिसेज सं० १८३०) ।

ग्रन्थनामानुक्रमणिका

ग्रन्थनाम	पृष्ठ

जैसलमेर के हस्तलिखित संस्कृत-ग्रन्थों के प्रसिद्ध भण्डारों के विषय में डॉ० ब्हूलर का अभिमत

[बर्लिन एकेडेमी के कार्य-विवरण, मार्च १८७४ से श्री शङ्कर पांडुरङ्ग, पंडित एम. ए. उपजिलाधीश, सूरत द्वारा अंग्रेजी में अनूदित]*

प्रो० वेबर ने जैसलमेर-मन्दिर के हस्तलिखित ग्रन्थ-संग्रह के विषय में प्रो. जे. ब्हूलर का बीकानेर से लिखित ता० १४ फरवरी का पत्र प्रस्तुत किया था।[1]

जैसलमेर में, जिसकी नींव लगभग बारहवीं शताब्दी के मध्य में भाटी राजपूतों की प्राचीन राजधानी लोद्रवा के विध्वंस के पश्चात् रक्खी गई थी, जैनियों की एक बड़ी बस्ती है।[2] परम्परागत अनुश्रुति के अनुसार इन लोगों के पूर्वज राजपूतों के साथ लोद्रवा से आये और वहीं से पारसनाथ (पार्श्वनाथ) की एक अति पवित्र मूर्ति को अपने साथ जैसलमेर में लाये। इस मूर्ति के लिये जिनभद्रसूरि के तत्वावधान में पन्द्रहवीं शताब्दी में एक देवालय का निर्माण हुआ, जिसमें क्रमशः ६ मन्दिर विभिन्न तीर्थंकरों की प्रतिष्ठा हेतु और जोड़े गये। इस मन्दिर और समस्त राजपूताना, मालवा एवं मध्यभारत में अपना व्यापार और रुपयों के लेन-देन का व्यवहार फैलाने वाले जैन-समाज के द्वारा जैसलमेर ने जैन-धर्म के मुख्य स्थान के रूप में बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की है। अस्तु, यहाँ के भण्डार अर्थात् पुस्तकालय की ख्याति विशेष रूप से सर्वत्र फैली हुई है जो कि गुजरातियों के मतानुसार संसार के सभी ऐसे भण्डारों से बढ़ कर है। अतएव मेरी यात्रा के मुख्य उद्देश्यों में से एक इस भण्डार में प्रवेश की अनुमति प्राप्त करना और इसकी सामग्री का विवरण विद्वानों तक पहुँचाने का था। थोड़ी कठिनाई के पश्चात् मैं इस रहस्य को सुलझाने में सफल हुआ और ज्ञात हुआ कि भण्डार के विस्तार के विषय में बहुत कुछ बढ़ा-चढ़ा कर कहा गया है, किन्तु उसकी सामग्री वास्तव में बहुत मूल्यवान है। ६० वर्ष पूर्व एक यति द्वारा तैयार की गई प्राचीन सूची के अनुसार बृहद् ज्ञानकोश में ४२२ विभिन्न रचनाएं थीं। जो कुछ मैंने देखा उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह सूची बहुत ही असावधानी से बनाई गई थी और उस समय विद्यमान ग्रन्थों की संख्या ४५० से ४६० तक

---

* हिन्दी अनुवादक– श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, एम. ए., साहित्यरत्न

[1] देखिये - डॉ० ब्हूलर का ता. २६ जनवरी का पत्र, इण्डियन एण्टीक्वेरी, वो. ३, मार्च १८७४, पृ. ८६।

[2] जैसलमेर-दुर्ग की नींव राव दूसाजी के पौत्र राव जैसल द्वारा वि.सं. १२१२ में रक्खी गई थी—हरिदत्त गोविन्द व्यास कृत "जैसलमेर का इतिहास" —हिन्दी अनुवादक।

थी। इन हस्तलिखित ग्रन्थों में से अधिकांश ताड़-पत्रों पर लिखित हैं और इनकी तिथियाँ बहुत प्राचीन काल तक गई हुई हैं। वर्तमान में तो किसी समय के गौरवपूर्ण संग्रह का अवशेष मात्र रह गया है। इस भण्डार में अब भी सुरक्षित ताड़पत्रीय ग्रन्थों के लगभग ४० बस्ते अर्थात् बण्डल; बिखरे और त्रुटित ताड़पत्रों का एक बड़ा ढेर; कागज पर लिखे ग्रन्थों से भरी हुई चार या पाँच छोटी पेटियाँ और फटे तथा अस्त-व्यस्त कागजों के कुछ दर्जन बण्डल हैं। पूर्ण रूपेण सुरक्षित ताड़पत्रीय ग्रन्थों में, जो सभी एक शैली में नहीं किन्तु एक ही लेखनी द्वारा लिखे गये हैं, बहुत थोड़ी जैन रचनाएं हैं। इनमें से यहाँ केवल धर्मोत्तरवृत्ति, कमला शीलतर्क, प्रत्येक बुद्धचरित, विशेषावश्यक और सूत्रों के कतिपय अंश एवं हेमचन्द्र-व्याकरण (अध्याय १-५) का एक बड़ा भाग तथा अनेकार्थ-संग्रह की एक टीका है, जो हेमचन्द्र की समस्त कृतियों की टीकाओं के रूप में स्वयं ग्रन्थकार द्वारा निर्मित हुई है। अन्तिम कृति का शीर्षक अनेकार्थ-कैरव-कौमुदी है। इसकी खोज इस सीमा तक महत्त्वपूर्ण है कि अनेकार्थ-कोश की प्रामाणिकता अब तक सन्देहास्पद रही है और अब इसकी प्राप्ति के पश्चात् कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता।

शेष ताड़पत्रीय ग्रन्थों में काव्यालंकार, न्याय और छन्द-शास्त्र आदि ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं। महाकाव्यों में रघुवंश एवं नैषधीय [चरित] हैं जिनमें से अपर काव्य की विद्याधर रचित एक प्राचीन और दुर्लभ्य टीका है (देखें—गुजरात के हस्तलिखित संस्कृत ग्रन्थों का सूचीपत्र नं० २, पृ० ६०, ग्रन्थांक १२४)। फिर वहाँ जयमङ्गल कृत टीका सहित भट्टि काव्य भी है।[1]

इनके अतिरिक्त हमें निम्नलिखित नवीन और बड़ी कृतियां उपलब्ध हुईं : बिल्हन अथवा बिल्हण कृत विक्रमाङ्कचरित, उपेन्द्र हरिपाल कृत गौड़वधसार और भट्ट लक्ष्मीधर कृत चक्रपाणिकाव्य।[2] इनमें से विक्रमाङ्कचरित सर्वोपरि महत्त्व का है। यह ऐतिहासिक कृति है, जिससे सोमेश्वर प्रथम अपरनाम आहवमल्ल, सोमेश्वर द्वितीय अर्थात् भुवनैकमल्ल[3] और विक्रमादित्यदेव अपर नाम त्रिभुवन मल्ल का इतिहास प्राप्त होता है।[4] तीनों ही के विषय में सुप्रसिद्ध है कि वे ११वीं शताब्दी में दक्षिण में कल्याणकटक के शासक थे और चालुक्य वंश से सम्बद्ध सोलंकी नाम से विशेष प्रसिद्ध थे। बिल्हण ने अपना स्वयं का इतिहास भी पर्याप्त विस्तार के साथ लिखा है और वह कहता है कि विक्रमादित्यदेव ने उसको विद्यापति की उपाधि प्रदान की थी। ज्ञात होता है कि उसने इस ग्रन्थ का निर्माण अपनी वृद्धावस्था में विक्रमादित्य के शासनकाल में किया, फलस्वरूप वह उस राजा के इतिहास का केवल अंश मात्र लिख सका। इस काव्य के १८ सर्ग हैं और इसमें २५४५

---

[1] स्यात् यह रचनाकार का नाम है। विचारणीय है कि रघुवंश के अनेक टीकाकारों ने जयमङ्गला टीका और इसके कर्ता का जयमङ्गलाकार के रूप में उल्लेख किया है।

[2] राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर द्वारा "राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला" में प्रकाशित, ग्रन्थाङ्क २०। —हि० अनु०।

[3] देखें—इण्डियन एण्टीक्वेरी, वो. १, पृ० १४१।

[4] वही, पृ० ८१-८३, १५८ और वो० २ पृ० २९७-९८।

श्लोक हैं। बिल्हण ने रघुवंश को आदर्श मान कर प्रायः प्रत्येक सर्ग में छन्द-परिवर्तन किया है। वह कहता है कि उसने वैदर्भी रीति में यह काव्य लिखा है किन्तु उसकी भाषा बहुत कठिन है। उसके शब्दाडम्बर से काव्य की प्रभावशीलता में न्यूनता आ गई है। फिर भी इसमें कतिपय पद ऐसे हैं जो वास्तव में कवित्वपूर्ण हैं और हमारी रुचियों के अनुकूल लिखे गये हैं। इनके अतिरिक्त हमें अनेक सूत्रों द्वारा पहले से ज्ञात विक्रम के सामरिक अभियानों के साथ और भी बहुत सूचनाएं मिलती हैं जो बहुत मनोरञ्जक हैं। इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि सोमेश्वर द्वितीय विक्रम का ज्येष्ठ भ्राता था और इसी के द्वारा वह सिंहासनच्युत किया गया था। बिल्हण ने सोमेश्वर का चित्रण एक पागल आदमी के रूप में किया है जो अपने अधिक प्रतिभा-सम्पन्न भाई के प्रति घोर घृणा-भाव को वहन करता था और परिणामत: जिसने कल्याण से पलायन के पश्चात् उसको नष्ट कर दिया। कठिनाईपूर्वक और केवल कुलदेवता शिव की आज्ञा से ही विक्रम उसके भाई के विरुद्ध युद्ध कर सका था। युद्ध में वह विजयी हुआ और उसने सोमेश्वर को बन्दी बनाया। दूसरा रुचिकर प्रसङ्ग एक स्वयंवर का वर्णन है, जो करहाटपति की पुत्री द्वारा आयोजित किया गया और जिसमें उसने विक्रम को अपना पति चुना। बिल्हण ने अपने स्वयं के इतिहास में इस बात का दुःख प्रकट किया है कि वह धारापति भोज के पास न जा सका। भोज और मुञ्ज की उदारता की प्रशंसा की गई है। जब मैं भोज का प्रसङ्ग देता हूं तो यह बता देना उपयुक्त होगा कि हमने एक ब्राह्मण से भोज का करण प्राप्त किया है जिसका समय शक संवत ९६४ (१०४२ ई०) है, साथ ही जैसलमेर-भण्डार में इस महान् परमार राजा के प्रेमाख्यान का एक अंश है जिसका शीर्षक शृंगारमञ्जरीकथानक है। क्योंकि विक्रमाङ्कचरित मुझे बहुत महत्त्वपूर्ण लगा इसलिये मैंने स्वयं इसकी प्रतिलिपि करने का निश्चय किया और यह कार्य अपने सहयात्री[1] मित्र डॉ० जेकोबी की सौहार्दपूर्ण सहायता से पूरा मीलान करने सहित सात दिन में पूर्ण हुआ। ग्रन्थ बहुत सुन्दर है, इसमें स्थान-स्थान पर शोधन और टिप्पणियां अङ्कित हैं। इस पर लेखन-संवत् अङ्कित नहीं है। परन्तु एक पश्चाल्लेख में लिखा है कि यह ग्रन्थ खेटमल्ल और जेठसिंह के द्वारा सं० १३४३ में खरीदा गया था। गौड़वधसार एक विस्तृत प्राकृतकाव्य है, इसमें राजा यशोवर्मन की प्रशस्ति है। प्रति में टीका और संस्कृत-छाया भी दी गई है। ग्रन्थ का विभाजन सर्गों में न हो कर कुलकों में हुआ है।

चक्रपाणिकाव्य जिसमें विष्णु का गुणगान हुआ है, अधिक विस्तार का नहीं है। संभवतः इसका समय ग्यारहवीं शताब्दी से बाद का है। इनके अतिरिक्त भण्डार में चार नाटक भी हैं जिनके नाम प्रबोधचन्द्रोदय, मुद्राराक्षस, वेणीसंहार और अनर्घराघव हैं। अन्तिम नाटक सटीक है। गद्यकाव्यों का प्रतिनिधित्व सुबन्धु कृत वासवदत्ता द्वारा होता है। अलङ्कार-शास्त्र के बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। ज्ञात कृतियों में दण्डी का वि० सं० ११६१ (११०५ ई०) का काव्यादर्श है। मम्मट का काव्य-प्रकाश भी सोमेश्वर की टीका सहित प्राप्त है जो, मैं समझता हूं एक नई टीका है। इनके अतिरिक्त वामनाचार्य कृत उद्भटालं-

---

[1] देखिये—वो० ३, पृ० ८९–९०।

कार नामक अलङ्कार-शास्त्र भी है और रुद्रटालङ्कार पर टीका का एक अंश एवं अलंकार-दर्पण (१३४ श्लोक) नामक प्राकृत ग्रन्थ भी उपलब्ध है। पूर्व तीनों आचार्यों के नाम मम्मट ने उद्धृत किये हैं। उद्भटालंकार की हस्तप्रति सं० ११६० (११०४ ई०) की है और यही इस संग्रह की सबसे प्राचीन प्रति है।

छन्द-शास्त्र में हेमचन्द्र के छन्दोनुशासन के अतिरिक्त जयदेव की कृति हर्षट टीका सहित मिली है जिसकी बहुत समय से खोज की जा रही थी। न्याय की कृतियां अनेक हैं और वे प्रायः अर्वाचीन हैं। कन्दली की एक पूर्ण प्रति आकर्षक है। सांख्य दर्शन का प्रतिनिधित्व अनिरुद्ध भाष्य, सप्तति और तत्त्वकौमुदी द्वारा हुआ है।

कागज पर लिखे हुए ग्रन्थों में जैनसूत्रों का एक बहुत सुन्दर संग्रह है जिसमें १५वीं शताब्दी के लिखे ग्रन्थ हैं। इसमें मेरे लिये नई सामग्री बहुत कम है।

इस संग्रह की मुख्य और मूल्यवान सामग्री ताड़पत्र पर लिखित ग्रन्थ ही हैं, जिनकी स्वच्छता और प्राचीनता को देख कर यह वांच्छनीय है कि सभी ज्ञात कृतियों के पाठ का पण्डितों द्वारा शुद्धतापूर्वक मीलान कराया जाय। रघुवंश के अतिरिक्त ये सभी हस्तप्रतियां १२वीं और १३वीं शताब्दी की हैं।

बीकानेर से मैं अपने साथ भरत का एक लगभग संपूर्ण नाट्यशास्त्र, शतपथ ब्राह्मण पर संपूर्ण टीका, सेतुबन्ध, अथर्ववेद का प्रातिशाख्य, पञ्चपटलिका की एक इसी तरह की प्रति और लगभग अन्य एक दर्जन नवीन वस्तुऐं लाया हूँ। इनके अतिरिक्त भी मैंने बहुत से जैन-ग्रन्थों की खरीद की है। भटनेर में कुछ नहीं मिला। जिन सुन्दर ताड़पत्रीय ग्रन्थों का विवरण कनिंघम ने दिया है, वे नितान्त दुर्लभ्य हो गये। शतरंज के विषय में मुझे मानसोल्लास नामक एक नई कृति मिली है, जिसका कर्त्ता चालुक्यराज सोमदेव है। इसमें भारतीय राजाओं के अन्य मनोविनोदों के साथ शतरंज का भी वर्णन है।[1] [दी इण्डियन एण्टीक्वेरी, वर्ष १८७५, पृ० ८१-८३]।
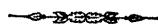
जैसलमेर से लिखा गया, 'इण्डियन एण्टीक्वेरी' के संपादक के नाम ब्हूलर का पत्र— दिनांक २९ जनवरी १८७४, प्रका. इ. ए., जिल्द ३, पृ. ८९-९०।*

मैंने इस नगर के प्रसिद्ध ओसवाल जैनियों के भंडारों का कुछ भाग देखने में सफलता प्राप्त की और इस कठिन यात्रा का इतना फल तो अवश्य ही निकल आया जो इस भू-भाग में निवास, बालू, खराब पानी और नाहरू के रोग को देखते हुए बदले में बुरा नहीं।

भंडार का अधिकांश भाग ताड़पत्रीय ग्रन्थों का है जिनका समय ११३० से १३४० ई० सन् तक है। इनमें ब्राह्मण ग्रन्थ भी हैं, मुख्यतः काव्य, नाटक, अलंकार तथा न्याय, व्याकरण

---

* हिन्दी अनुवादक— श्री पद्मधर पाठक, एम. ए.

---

[1] स्पष्ट है कि चेम्बर्स का ७९४वां अंश इसी से सम्बद्ध है। देखिये, मेरा संस्कृत-ग्रन्थों का सूचीपत्र, रायल बिब्लोथिका, पृ० १७२-७३। इसमें शतरंज का अध्याय नहीं है —वेबर।

विषयक पुस्तकें हैं। इनमें से एक पोथी हमें काश्मीरी भट्ट बिल्हण अथवा विल्हण की एक अज्ञात कृति का सूचन करती है जिसकी 'पंचाशिका' सामान्यतः ज्ञात है। १७ सर्गों में विभक्त यह काव्य कल्याण के प्रसिद्ध चालुक्य राजा विक्रमादित्य, अतिरिक्त नाम त्रिभुवन-मल का प्रसंशागान है और १८वां सर्ग बिल्हण के निजी इतिहास से संबंधित है। इसका शीर्षक 'विक्रमाङ्कभिधानम् काव्यम्' अथवा 'विक्रमाङ्कचरितम्' है।

मेरा विश्वास है कि कल्याण के चालुक्य केवल अपने शिलालेखों द्वारा ही ज्ञात हैं और इस कारण एक साहित्यिक कृति में उनके कार्यों का वर्णन् प्राप्त होना बड़ी रोचक बात है। यह आकर्षण इस वास्तविकता से और भी समुन्नत हो जाता है कि बिल्हण, विक्रमादित्यदेव का विद्यापति था और उसका साक्ष्य उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि वर्णित घटनाओं के प्रत्यक्षदर्शी अथवा समकालीन कवि का समझा जा सकता है। चरित का प्रारंभ चालुक्य-जाति की सृष्टि से होता है और वर्तमान वंशजों का वृक्ष 'पैलप' से चलता है। आरंभिक राजाओं का संक्षिप्त सा वर्णन कुछ ही श्लोकों में करके छोड़ दिया गया है, परन्तु आहवमल्ल और सोमेश्वर के राज्यकाल को अधिक महत्त्व दिया गया है; इनमें से पूर्व विक्रमादित्य का पिता था और अपर अर्थात् सोमेश्वर उसका बड़ा भाई था। विक्रमादित्य का इतिहास संपूर्ण नहीं हुआ है क्योंकि कवि के रचनाकाल में वह जीवित था। अंतिम सर्ग में बिल्हण के आत्म-चरित्र के अतिरिक्त काश्मीर के हर्षदेव का, उसके पूर्वजों और उत्तराधिकारियों का वर्णन है। धार के भोज का बार-बार उल्लेख है और एक स्थान पर बिल्हण के समकालीन के रूप में भी, जिसका उससे कभी साक्षात्कार नहीं हुआ। काव्य में अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है और इसकी शैली वैदर्भीरीति है।

इस प्रति में लिखन-संवत् कहीं नहीं दिया है परन्तु १३वीं श० के अंत में खेतमल और जैतसिंह ने इसका पुनः क्रय किया था। मैं कहूंगा कि यह १२वीं श. के अंत में लिखा गया था। मैंने डाक्टर यॉकोबी की सहायता से, जो मेरी यात्राओं के साथ रहते हैं, पुस्तक की प्रतिलिपि करली है। मैं विश्वास करता हूँ कि इसका कोई संस्करण सुलभ होगा क्योंकि ग्रन्थ बहुत सावधानी से लिखा गया है और शोधन और टिप्पणियों में तो और भी अधिक सावधानी बरती गई है। शोधन बहुत पहले किया गया जान पड़ता है। हम भंडार में ६ दिन काम कर चुके हैं परन्तु अभी वह पूरा नहीं हुआ है। यदि, जैसा कि लोग इसकी विशालता के संबंध में कहते हैं सच निकले और हम पूरे संग्रह को देखने में सफल हुए तो यह संभावना है कि हम मार्च से पहिले यहां से न निकल सकेंगे। हमने भारी संख्या में महत्त्वपूर्ण पुस्तकें खरीदी हैं और कुछ अद्भुत् वस्तुएँ भी जिनमें से राजा भोज का शक ९६४ अथवा ई० सन् १०४० का करण उल्लेखनीय है।

जो कुछ हमें सूरत में उपलब्ध है, उससे अधिक यहां के यतियों के पास कुछ नहीं है। इन लोगों का व्यवहार बहुत ही सौहार्दपूर्ण और संसूचनात्मक है। ओसवालों का पंच, जो कि इस वृहद भंडार का स्वामी है, बहुत कठोर है। उससे काम लेने के लिए प्रायः रावल के प्रभाव का उपयोग करना पड़ता है, परन्तु मेरा विश्वास है कि अंत में हम सब कुछ देखने में समर्थ होंगे।

—जे. जी. ब्हूलर

जैसलमेर, २९ जनवरी, १८७४

राजस्थान पुरातन ग्रन्थ-माला

प्रधान सम्पादक–पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य

प्रकाशित ग्रन्थ

१. संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश

१. **प्रमाणमंजरी**, तार्किकचूडामणि सर्वदेवाचार्यकृत, सम्पादक – मीमांसान्यायकेसरी पं० पट्टाभिरामशास्त्री, विद्यासागर। मूल्य–६.००
२. **यन्त्रराजरचना**, महाराजा-सवाईजयसिंह-कारित। सम्पादक–स्व० पं० केदारनाथ ज्योतिर्विद्, जयपुर। मूल्य–१.७५
३. **महर्षिकुलवैभवम्**, स्व० पं० मधुसूदनओझा-प्रणीत, भाग १, सम्पादक–म० म० पं० गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी। मूल्य–१०.७५
४. **महर्षिकुलवैभवम्**, स्व० पं० मधुसूदन ओझा प्रणीत, भाग २, मूलमात्रम् सम्पादक–पं० श्रीप्रद्युम्न ओझा। मूल्य–४.००
५. **तर्कसंग्रह**, अन्नंभट्टकृत, सम्पादक–डॉ. जितेन्द्र जेटली, एम.ए., पी-एच. डी., मूल्य–३.००
६. **कारकसंबंधोद्योत**, पं० रभसनन्दीकृत, सम्पादक–डॉ० हरिप्रसाद शास्त्री, एम. ए., पी-एच. डी.। मूल्य–१.७५
७. **वृत्तिदीपिका**, मौनिकृष्णभट्टकृत, सम्पादक–स्व.पं. पुरुषोत्तमशर्मा चतुर्वेदी, साहित्याचार्य। मूल्य–२.००
८. **शब्दरत्नप्रदीप**, अज्ञातकर्तृक, सम्पादक–डॉ. हरिप्रसाद शास्त्री, एम. ए., पी-एच.डी.। मूल्य–२.००
९. **कृष्णगीति**, कवि सोमनाथविरचित, सम्पादिका–डॉ. प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्। मूल्य–१.७५
१०. **नृत्तसंग्रह**, अज्ञातकर्तृक सम्पादिका–डॉ. प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्। मूल्य–१.७५
११. **शृङ्गारहारावली**, श्रीहर्षकवि-रचित, सम्पादिका–डॉ. प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच.डी., डी.लिट्। मूल्य–२.७५
१२. **राजविनोदमहाकाव्य**, महाकवि उदयराजप्रणीत, सम्पादक–पं० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम. ए., उपसञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर। मूल्य–२.२५
१३. **चक्रपाणिविजय महाकाव्य**, भट्टलक्ष्मीधरविरचित, सम्पादक–पं० श्रीकेशवराम काशीराम शास्त्री। मूल्य–३.५०
१४. **नृत्यरत्नकोश (प्रथम भाग)**, महाराणा कुम्भकर्णकृत, सम्पादक–प्रो. रसिकलाल छोटालाल पारिख तथा डॉ० प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्। मूल्य–३.७५
१५. **उक्तिरत्नाकर**, साधसुन्दरगणिविरचित, सम्पादक–पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजयजी, पुरातत्त्वाचार्य, सम्मान्य संचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर। मूल्य–४.७५
१६. **दुर्गापुष्पाञ्जलि**, म०म० पं० दुर्गाप्रसादद्विवेदिकृत, सम्पादक–पं० श्रीगङ्गाधर द्विवेदी, साहित्याचार्य। मूल्य–४.२५
१७. **कर्णकुतूहल**, महाकवि भोलानाथविरचित, इन्हीं कविवर की अपर संस्कृत कृति श्रीकृष्णलीलामृत सहित, सम्पादक–पं० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम. ए., मूल्य–१.५०
१८. **ईश्वरविलासमहाकाव्य**, कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्टविरचित, सम्पादक–भट्ट श्रीमथुरानाथशास्त्री, साहित्याचार्य, जयपुर। स्व. पी. के. गोड़े द्वारा अंग्रेजी में प्रस्तावना सहित। मूल्य–११.५०
१९. **रसदीर्घिका**, कविविद्यारामप्रणीत, सम्पादक–पं० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम.ए. मूल्य–२.००
२०. **पद्यमुक्तावली**, कविकलानिधि श्रीकृष्णभट्टविरचित, सम्पादक–भट्ट श्रीमथुरानाथ शास्त्री, साहित्याचार्य। मूल्य–४.००
२१ **काव्यप्रकाशसंकेत**, भाग १ भट्टसोमेश्वरकृत, सम्पा०–श्रीरसिकलाल छो० पारीख, अंग्रेजी में विस्तृत प्रस्तावना एवं परिशिष्ट सहित मूल्य–१२.००
२२. **काव्यप्रकाशसंकेत**, भाग २ भट्टसोमेश्वरकृत, सम्पा०–श्रीरसिकलाल छो० पारीख, मूल्य–८.२५

२. राजस्थानी और हिन्दी

प्रेसों में छप रहे ग्रंथ

संस्कृत

१. **शकुनप्रदीप**, लावण्यशर्मरचित, सम्पा०—पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय ।
२. **त्रिपुराभारतीलघुस्तव**, लघुपण्डितप्रणीत, सम्पा०—पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय ।
३. **बालशिक्षाव्याकरण**, ठक्कुर संग्रामसिंहरचित, सम्पा०—पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय ।
४. **पदार्थरत्नमंजूषा**, पं० कृष्णमिश्रविरचित, सम्पा०—पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय ।
५. **नन्दोपाख्यान**, अज्ञातकर्तृक, सम्पा०—डॉ० बी.जे. सांडेसरा ।
६. **चान्द्रव्याकरण**, आचार्य चन्द्रगोमिविरचित, सम्पा०—श्री बी. डी. दोशी ।
७. **प्राकृतानन्द**, रघुनाथकवि-रचित, सम्पा०—पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय ।
८. **कविकौस्तुभ**, पं० रघुनाथरचित, सम्पा०—श्री एम. एन. गोरे ।
९. **एकाक्षर नाममाला**—सम्पा०—मुनि श्री रमणिकविजय ।
१०. **नृत्यरत्नकोश**, भाग २, महाराणा कुंभकर्णप्रणीत, सम्पा०—श्री आर. सी. पारिख और डॉ. प्रियबाला शाह ।
११. **इन्द्रप्रस्थप्रबन्ध**, सम्पा०—डॉ. दशरथ शर्मा ।
१२. **हमीरमहाकाव्यम्**, नेयचन्द्रसूरिकृत, सम्पा०—पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय ।
१३. **वासवदत्ता**, सुबन्धुकृत, सम्पा०—डॉ० जयदेव मोहनलाल शुक्ल ।
१४. **वृत्तमुक्तावली**, कविकलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट कृत; सं० पं० भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ।
१५. **आगमरहस्य**, स्व० पं० सरयूप्रसादजी द्विवेदी कृत, सम्पा०—प्रो० गङ्गाधर द्विवेदी ।

राजस्थानी और हिन्दी

१६. **मुंहता नैणसीरी ख्यात**, भाग ३, मुंहता नैणसीकृत, सम्पा०—श्रीबद्रीप्रसाद साकरिया ।
१७. **गोरा बादल पदमिणी चऊपई**, कवि हेमरतनकृत सम्पा०—श्रीउदयसिंह भटनागर, एम.ए.
१८. **राठौड़ांरी वंशावली**, सम्पा०—पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय ।
१९. **सचित्र राजस्थानी भाषासाहित्यग्रन्थसूची**, सम्पा०—पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय ।
२०. **मीरां-बृहत्-पदावली**, स्व० पुरोहित हरिनारायणजी विद्याभूषण द्वारा संकलित, सम्पा०—पद्मश्री मुनि श्रीजिनविजय ।
२१. **राजस्थानी साहित्यसंग्रह**, भाग ३, संपादक—श्रीलक्ष्मीनारायण गोस्वामी ।
२२. **सूरजप्रकाश**, भाग ३, कविया करणीदानकृत सम्पा०—श्रीसीताराम लाळस ।
२३. **रुक्मिणी-हरण**, सांयांजी झूला कृत, सम्पा० श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, एम.ए.,सा.रत्न
२४. **सन्त कवि रज्जब : सम्प्रदाय और साहित्य**, डॉ० व्रजलाल वर्मा ।
२५. **पश्चिमी भारत की यात्रा**, कर्नल जेम्स टॉड, हिन्दी अनु० श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम.ए.
२६. **स्थूलिभद्रकाकादि**, सम्पा०—डॉ० आत्माराम जाजोदिया ।

अंग्रेजी

27. Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts Part I, R.O.R.I. (Jodhpur Collection), ed., by Padamashree Jinvijaya Muni, Puratattvacharya.
28. A List of Rare and Reference Books in the R.O.R.I., Jodhpur, compiled by P.D. Pathak, M.A.

विशेष— पुस्तक-विक्रेताओं को २५% कमीशन दिया जाता है ।